श्रीअरविन्द कर्मधारा

21 फरवरी, 2021 वर्ष 51 अंक-1

श्रीअरविन्द आश्रम-दिल्ली शाखा श्रीअरविन्द मार्ग,नई दिल्ली

श्रीअरविन्द कर्मधारा

श्रीअरविन्द आश्रम

दिल्ली शाखा का मुखपत्र

जनवरी-फरवरी -2021

(अंक - 1)

संस्थापक

श्री सुरेन्द्रनाथ जौहर 'फकीर'

सम्पादन : अपर्णा रॉय

विशेष परामर्श समिति

कु0 तारा जौहर, विजया भारती,

ऑनलाइन पब्लिकेशन ऑफ श्रीअरविन्द आश्रम, दिल्ली शाखा

(निःशुल्क उपलब्ध)

कृपया सब्सक्राइब करें-
saakarmdhara@rediffmail.com

कार्यालय
श्रीअरविन्द आश्रम, दिल्ली-शाखा
श्रीअरविन्द मार्ग, नई दिल्ली-110016
दूरभाषः 26567863, 26524810

आश्रम वैबसाइट
(www.sriaurobindoashram.net)

भागवत प्रेम

भागवत प्रेम में ही रूपांतर करने की शक्ति है। उसे जो यह शक्ति प्राप्त है इसका कारण यह है कि उसने रूपांतर का कार्य सिद्ध करने के लिए अपने - आपको जगत् के हवाले कर दिया है और यहाँ वह सर्वत्र अभिव्यक्त हो रहा है। केवल मनुष्य के अन्दर ही नहीं बल्कि जड़ तत्व के समस्त अणु - परमाणु तक में वह प्रविष्ट हो रहा है जिसमें कि वह जगत् को फिर से उसके मूल दिव्य सत्य तक वापस ले आ सके। जैसे ही तुम उसकी ओर उन्मुख होते हो वैसे ही तुम उसकी रूंपातरकारिणी शक्ति को भी ग्रहण करते हो। परन्तु उसकी नाप - तोल तुम किसी परिणाम के रूप में नहीं कर सकते - मूल बात है बस सच्चा संस्पर्श स्थापित करना क्योंकि तुम देखोगे कि उसके साथ सच्चा संस्पर्श करना ही अपनी सारी सत्ता को उससे तुरत भर लेने के लिए पर्याप्त है।

प्रार्थना और ध्यान

-श्रीमाँ

"हे प्रभु, मैं तुझसे, प्रार्थना करती हूँ कि यदि मेरी बुद्धि सीमित हो तो उसे विस्तृत कर, यदि मेरा ज्ञान धूमिल हो तो उसे आलोकित कर,

यदि मेरा हृदय ऊष्मारहित हो तो उसे प्रदीप्त कर,

यदि मेरा प्रेम तुच्छ हो तो उसे सघन कर,

यदि मेरी भावनाएँ अज्ञ एवं अहं ग्रस्त हों तो उन्हें सत्यता में जाग्रत व सचेतन बना ।

और मेरा यह 'मैं' जो तेरी प्रार्थना कर रहा है, अन्य सैकड़ों के बीच खोया ,

कोई एक तुच्छ व्यक्तित्व नहीं है।

यह तो समूची पृथ्वी है जो पूर्ण उत्साह में भर तेरी अभीप्सा करती है।"

विषय-सूची

क्र.सं.	रचना	रचनाकार	पृष्ठ
1	संपादकीय	अपर्णा रॉय	5
2	नव वर्ष उन्मेष	रविशंकर	7
3	दिव्य जीवन की अधिष्ठात्री: श्रीमाँ	विमला गुप्ता	9
4	तीन गांठें	अज्ञात	13
5	नव वर्ष स्वागत	मोहन स्वामी	14
6	भारतीय संस्कृति एवं भावी समाज	डॉ. जे.पी. सिंह	15
7	माँ से प्रार्थना	शैलेन्द्र प्रसाद पाण्डेय	17
8	सावित्री	मंगेश नाडकर्णी	19
9	श्रीमाँ की प्रार्थनाओं से उठती अभीप्सा-सुगंध	श्रीमाँ	28
10	सच्ची भेंट	निवारण चन्द्र	31
11	स्थापना-दिवस	सुरेन्द्रनाथ जौहर	32
12	कौन	अनुवाद -विमला गुप्ता	36
13	पथ पर	श्रीमाँ	38
14	आश्रम गतिविधियाँ		40

सम्पादकीय

सभी पाठकों को

नव वर्ष का अभिनंदन!

साथियों सन 2021 आप सभी के लिए नवीन खुशियां, नए उत्साह और सर्वांगीण विकास का मार्ग प्रदर्शित करे। आपके सामने इस वर्ष का प्रथम अंक प्रस्तुत है। यह अंक 2021 वर्ष के जनवरी - फरवरी मास के लिए है और हम सभी जानते हैं कि नया वर्ष अपने आप में एक प्रतीकात्मक अर्थ रखता है। हर वर्ष श्रीमाँ के द्वारा तैयार नए वर्ष का संगीत { new year music} इसी बात का प्रतीक है। श्रीमाँ हम सबके प्रति स्नेह और आशीर्वाद अभिव्यक्त करती हैं उस संगीत के माध्यम से। श्रीअरविंद आश्रम दिल्ली शाखा के लिए यह फरवरी माह और भी महत्वपूर्ण समय हो जाता है क्योंकि आश्रम की इस शाखा की स्थापना भी इसी मास फरवरी मास की 12 तारीख को हुई थी। आश्रम के संस्थापक श्री सुरेंद्रनाथ जौहर जी के निवेदन पर श्री माँ ने यह तिथि निर्धारित की थी। श्रीमाँ की दृष्टि में संख्या 12 और 21 दोनों समान रूप से प्रभावकारी थीं। श्रीअरविंद आश्रम दिल्ली शाखा के लिए जनवरी का महीना भी कम महत्व नहीं रखता। जनवरी माह में ही हमारे अनिल जी का जन्म दिवस तथा पुण्यतिथि दोनों ही इसे विशेष रूप से स्मरणीय बना देती हैं।

21 फरवरी का पुनीत दिवस सहज ही श्रीमाँ के प्रति प्रेम और समर्पण की भावना से हमें भर देता है। मन में यह भाव उठता है कि समस्त विश्व को अपना प्रेम और मार्गदर्शन देने वाली करुणामयी माँ को हम साधारण मनुष्य भेंट में क्या दे सकते हैं। थोड़ा सा सोचें तो यह याद आता है कि श्रीमाँ से हमें क्या नहीं मिला, और यह भी कि उन्होंने हमसे क्या चाहा। क्या हम उनके आदर्श बालक बन सके या बन सकते हैं ? क्योंकि हमारे पास जो कुछ भी है सब तो उनका ही है। उनका प्रतीक चिह्न हमें संदेश देता है कि उसमें दिए गए 12 गुणों के द्वारा यदि हम आंतरिक विकास का संकल्प कर लें तो श्रीमाँ के लिए उनके बच्चों की ओर से यह सर्वोत्तम भेंट होगी। क्या हम सब एकजुट होकर उनके प्रति अपने यह भाव प्रकट कर सकते हैं? श्रीमाँ को संपूर्ण मानव जगत की ओर से यह भेंट प्रस्तुत की जा सकती है - चैत्य संपर्क के द्वारा, पूर्ण सच्चाई के साथ निष्कपट रूप से मार्ग की कठिनाइयों को भागवत कृपा से प्राप्त अवसर मान कर ग्रहणशीलता के साथ स्वीकार करना, अहम रहित विनम्रता के साथ माँ के प्रति कृतज्ञता का भाव बनाए रखना, निरंतर प्रयास करते हुए प्रगति के पथ पर गतिशील रहना और सतत रूप से ईश्वर को पाने की गहन अभीप्सा की ज्योति को जलाए रखने के लिए दृढ़ संकल्प रखना। अपनी मानसिक तथा प्राणिक दुर्बलताओं का सामना साहस के साथ करना, साहस ऐसा हो जिसमें किसी भी रूप में भय के लिए किंचित मात्र भी स्थान ना रहे। हर स्थिति में ईश्वर की इच्छा को स्वीकारते हुए अपने अंदर सद्भाव और सामंजस्य के साथ शुभेच्छा के भाव को बनाए रखना, अहं विहीन रूप से कर्म करते हुए उदार बने रहने की सजगता बरतना, लाभ - हानि, सुख - दुख, कठिन - सरल, रुचिकर - रुचिकर सभी अवस्थाओं को साक्षी भाव से देखते हुए मन की अचंचलता एवं प्राण के शांति रूप का नीरव अवलोकन करना, श्रीमाँ से निवेदन करना कि हमारा जीवन उनके मार्गदर्शन का अनुगमन करें।

हम वही करें जो वे हमसे करवाना चाहती हैं, हम वही बनें जो वे हमें बनाना चाहती हैं। तो आइए इस पत्रिका के इस अंक के साथ हम सब श्रीमाँ के प्रति इसी प्रतिज्ञा के पालन का संकल्प करें

शुभेच्छा और अभिवादन के साथ,

डॉ. अपर्णा रॉय

यह जगत न तो माया की सृष्टि है और न केवल भगवान की लीला, न अज्ञान में होने वाले जन्मों का एक चक्र जिसमें से हमें बाहर निकल जाना होगा, बल्कि अभिव्यक्ति का एक क्षेत्र है जिसमें अन्तरात्मा का तथा जड़तत्त्व की प्रकृति का विकास होता है और यह विकास जड़तत्त्व से प्राण और मन में से होता हुआ मन से परे के किसी तत्त्व की ओर तब तक होता रहता है जब तक कि जीवन में सच्चिदानन्द की पूर्ण अभिव्यक्ति नहीं हो जाती।

नव वर्ष : उन्मेष

-रविशंकर

अनंत भुवनों की सीमायें पारकर
अज्ञात के अलौकिक धाम से
ममता के चरण - रज से नि:सृत
आ रही हैं रश्मियाँ नव - ज्ञान की
नव वर्ष में
सहस्त्रों सूर्य मण्डल होते हैं दैदीप्यमान ।
खिल रहे हैं पंकज दल
अरुणिम बिहान में
सिंदूरी पराग से रंजित हर मार्ग है ।
मलय पवन में मिश्रित सुहाग है ।
सौरभ से सिक्त
सप्तस्वरों से सिंचित
कण-कण करता अभिवादन सहर्ष है ।
ज्योति शिखरों पर विचरण करते
हे असीम के उपासक
जागो ! उठो ! !
सिरहाने तुम्हारे
मधुरिम सपनों के प्रभात में
खड़ी हैं नूतन ऊषाएँ
नवल ऋचाओं और स्त्रोतों से गायन करो साम-गान
मिलकर अखण्डित स्वरों में
ऋषि पुत्रों, आर्यों, धरती के बालकों
पहुँच चुका है दिव्य प्रकाश
अतिमानस के लोक से
देखो ब्रह्माण्ड में

मन, प्राण, हृदयाकाश में

आत्मा के प्रकाश में

प्रभुवर की झाँकी

माँ की मूरत

ममता की सूरत

ज्योतिर्मय विग्रह

ऊँ शाँति - शाँति - शाँति

श्रीमाँ

केवल एक ही दिव्य शक्ति है जो विश्व में भी कार्य करती हैं और व्यक्तियों में भी और फिर जो व्यक्ति और विश्व के परे भी है। श्रीमाँ इन सबकी प्रतिनिधि हैं, पर वे यहाँ शरीर में रहकर कुछ ऐसी चीज़ उतारने के लिए कार्य कर रही हैं जो अभी तक इस स्थूल जगत् में इस तरह अभिव्यक्त नहीं हुई है कि यहाँ के जीवन को रूपान्तरित कर सके-अतः तुम्हें उनको इस उद्देश्य से यहाँ कार्य करनेवाली भागवती शक्ति समझना चाहिए। वे अपने शरीर में वही हैं, पर अपनी सम्पूर्ण चेतना में वे भगवान के सभी स्वरूपों के साथ अपना तादात्म्य बनाये हुई हैं।

-अरविन्द

दिव्य जीवन की अधिष्ठात्री: श्रीमाँ

विमला गुप्ता

"पृथ्वी की शुरूआत से जब कभी और कहीं चेतना की एक किरण के भी आविर्भाव की सम्भावना हुई, मैं वहाँ विद्यमान थी।"

श्रीमाँ के आत्मपरिचय की यह पंक्ति हमें उनकी शाश्वत उपस्थिति के उन स्तरों पर ले आती हैं जहाँ जीवन समय और संस्कारों की गिरफ्त से मुक्त है। जिसे सृष्टि के क्रम विकास की परम्परा विभाजित नहीं कर सकती। ऐसी शाश्वत चेतना जब नाम रूप धारण कर लेती है तो पृथ्वी पर एक नवीन युग का उदय होता है। हमारे इस युग ने ऐसे ही महिमामय क्षणों में "माँ" को जन्म देकर अपने को चिरकाल के लिए कृतार्थ कर लिया।

21 फरवरी 1978 को पेरिस के एक धनाढ्य परिवार में एक कन्या ने जन्म लिया। नाम मिला " मिरा अलफासां "। बचपन से ही गंभीर भाव मुद्रा में चुपचाप बैठकर कुछ सोचना उस बालिका का स्वभाव था। अपने भीतर उसे यह धुँधला सा आभास होता था कि वह किसी अन्य शक्ति से जुड़ी है जो साधारण मानव चेतना से ऊपर है। प्राय: अपने सिर के ऊपर उसे एक प्रकाश का घेरा दिखाई देता था। इस चंचल आयु में यों गंभीर रहना इसकी माँ को नहीं भाया, टोक दिया, 'खेलो कूदो, क्या दुनिया का बोझ है तुम पर, जो यों गुमसुम बैठी रहती हो ?' 'हाँ' है दृढ़ उत्तर मिला। पर बचपन बचपन होता है उसे गंभीरता से कौन लेता है? सतह पर बालिका का जीवन अपने सामान्य ढंग से बढ़ रहा था, पर भीतर विस्मृति के धुन्ध छटते जा रहे थे। छोटी - छोटी घटनाओं और अनुभूतियों में अपने होने की सार्थकता कुछ और ही संकेत करती पर निश्चित रूपरेखा स्पष्ट नहीं थी। अपने तेरह वर्ष की अल्प आयु में यह बालिका एक वर्ष तक बड़े विचित्र अनुभव से गुज़री। "रात को ज्यों ही वह बिस्तर पर लेटती, उसे प्रतीत होता कि वह शरीर से बाहर निकल सीधे घर के ऊपर और फिर नगर के ऊपर बहुत ऊँचे ऊपर उठ रही है, फिर वह अपने आपको एक सुनहरा चोगा पहने हुए देखती जो उसके चारों ओर घेरे के रूप में इस प्रकार फैल जाता कि नगर के ऊपर एक शामियाने के समान प्रतीत होने लगाता। और तब सब दिशाओं से वह स्त्रियों, पुरुषों, वृद्धों, रोगियों और दुखी मनुष्यों की भीड़ निकलते देखती। वे सब उस विशाल चोगे के नीचे एकत्रित हो उससे

सहायता की याचना करते, अपने दुख कष्ट पीड़ाएँ सुनाते। प्रत्युत्तर में वह विचित्र नमनीय चोगा प्रत्येक की ओर झुक जाता और ज्यों ही वे उसे छूते, उन्हें सान्त्वना प्राप्त होती। वे प्रसन्न आश्वस्त और निरोग हो लौट जाते।"

छोटी उम्र का यह अनुभव माँ की "प्रार्थना और ध्यान" नामक पुस्तक में बड़े विस्तार से वर्णित है वस्तुतः यह अनुभव उनके परवर्ती जीवनकाल का साररूप उदाहरण है। वे 1914 में प्रथम बार भारत आई थीं और फ्रेंच कॉलोनी पांडिचेरी में ठहरी थीं। अपनी जिस अन्तः प्रेरणावश वह भारत आईं थीं, उसकी सच्चाई श्रीअरविन्द के प्रथम दर्शन में ही उन्हें स्पष्ट हो गई थीं। 29 मार्च 1914 को संध्या समय उनकी श्रीअरविन्द से भेंट हुई थी। उस लघु भेंट में ही उन्होंने यह आश्वासन पा लिया कि :

"परवाह नहीं, अगर सैंकड़ों मनुष्य घने अंधकार में डूबे हैं। वे जिन्हें हमने कल देखा, वे तो पृथ्वी पर ही हैं। उनकी उपस्थिति इस बात का प्रमाण है कि एक दिन आयेगा जब अन्धकार प्रकाश में परिवर्तित होगा और जब तेरा राज्य पृथ्वी पर कार्यरूप में स्थापित होगा।"

माँ के शब्दों की गहनता पर हमेशा ध्यान रखना चाहिए 'कार्यरूप में स्थापित होगा' अर्थात भगवान का राज्य पृथ्वी पर प्रत्यक्ष रूप में स्थापित नहीं है। परोक्ष रूप में उसकी उपस्थिति सदैव थी, है और रहेगी। पर कार्यरूप से अपने राज्य की स्थापना के लिए ही प्रभु ने इन दो महान शक्तियों की भेंट का आयोजन रचा था। और पृथ्वी ही इन दोनों के कार्य का 'धर्मक्षेत्र', 'कुरुक्षेत्र' और 'कर्मक्षेत्र' थी। श्रीमाँ की अनेक घोषणाओं, वक्तव्यों और डायरी के पृष्ठों में पृथ्वी के इस महत प्रयोजन का हम बार - बार उल्लेख पाते हैं:

"तू मुझे समस्त पृथ्वी का प्रतिनिधि बन जाने दे ताकि वह मेरी चेतना के साथ युक्त होकर, बिना कुछ बचाये तुझे समर्पित हो सके।"

"हे स्वामी! यह मेरा मैं जो तुझसे बोलता है तेरी अभीप्सा करता है, समूची पृथ्वी का हृदय है जो तेरी दिव्य ज्योति की पूर्ण प्रतिछवि को प्रतिबिम्बित करनेवाला पवित्र हीरा बन जाना चाहता है। मेरे हृदय में सबके हृदय धड़क रहे हैं और मेरे विचारों में सबके विचार तरंगित हैं। तेरे प्रेम और प्रकाश की उन्नत चोटियों को लांघती मेरे हृदय की यह सामूहिक अभीप्सा तुझे उन दुखों की छाया में उतार लाने को निरन्तर उठ रही है, जिससे तू इनमें प्रवेश कर इन्हें अपनी परम शान्ति और आनन्द में रूपान्तरित कर दे।"

आरोहण और अवतरण की यह प्रक्रिया ही श्रीमाँ - श्रीअरविन्द की योग विधि का एकमात्र आधार रही है। यह पृथ्वी जीवन जो अपूर्णताओं, अशक्यताओं और अज्ञान से पीड़ित है अनेक प्रकार के दुखों और खतरों से शंकित और सहमा हुआ है - क्या ऐसा ही रहेगा ? क्या यही उसकी नियति है ? नहीं! अविचल विश्वास के साथ आवाज आती है। "इसकी नियति इसका दिव्यीकरण है। भागवत चेतना में निवास हैं - और इसी कार्य हेतु हम यहाँ आये हैं।"

"इस संसार को प्रभु की अमर्त्य रोशनी में उठाने के लिए उस परम चेतन को जड़ तत्व में उतारने के लिए और इस पार्थिव जीवन को दिव्य जीवन में बदल देने के लिए ही हम यहाँ आये हैं।"

पर पृथ्वी जीवन को उसके प्रयोजन का विश्वास देना उसकी चेतना को दिव्य चेतना का स्पर्श देना, और उसे प्रभु के कार्य के लिए स्वयं को प्रस्तुत कर देने की योग्यता देना, यह कोई सहज आसान तो नहीं था, कहीं बड़ा असाध्य काम था। इसको साधित करने के लिए माँ ने अपने जीवन का एक-एक क्षण उत्सर्ग कर दिया। अपने शरीर का प्रत्येक कोष, कम्पन, रक्त की

एक-एक बूंद इसे भेंट कर दी कि सर्वप्रथम वह स्वयं उदाहरण बनकर प्रस्तुत हों - विजय का विश्वास दिलायें। संसार के पद् दलित करने वाली दुराग्रही आसुरिक शक्तियों से युद्ध करने के लिए उन्होंने खुली चुनौती दी:

"हमारा युद्ध किसी धार्मिक मत और धर्म से नहीं है, हमारा संघर्ष किसी शासन व्यवस्था से नहीं, हमारा विरोध किसी जाति और सामाजिक वर्ग से नहीं, हमारी लड़ाई किसी राष्ट्र और सभ्यता से नहीं। हम विभाजन, अचेतना, अज्ञान, प्रमाद और झूठ के खिलाफ लड़ रहे हैं, हम इस पृथ्वी पर एकता, ज्ञान, चेतना और सचाई स्थापित करने के लिए लड़ रहे हैं। और हम उन सबका सशक्त विरोध करेंगे जो प्रभु के इस नये प्रकाश और प्रेम, सच्चाई और शांति के स्वरूप और प्रादुर्भाव में विघ्न डालेंगे।"

यह वाणी किसी अहंकार पीड़ित मानव की नहीं है। यह तो साक्षात् अदिति माँ की वाणी है!

24 अप्रैल 1920 को माँ सदा - सदा के लिए अपना देश, समाज और परिवार छोड़कर पांडिचेरी आ गई थीं। शब्दों की सार्थकता में यह बात उनके जीवन - क्रम का एक मोड़ बनकर रह जाती है परन्तु उस विधि के आलेख में यह एक ऐसी महत् घटना है, जिसकी उपलब्धियों और परिणामों की गणना किसी काव्य, साहित्य, इतिहास अथवा शास्त्र में नहीं हो सकती। सिर्फ उनके शरणागत बालकों के हृदय - स्पन्दन ही इसकी अनुभूति के महत्व को दोहरा सकते हैं।

हमें अपना एक अत्यन्त तुच्छ सुख, दिनचर्या की एक आदत, पसन्द, यहाँ तक दुख वेदना की अनुभूति को भी अपने से छूंटते पाकर कितना कष्ट होता है कितनी बौखलाहट होती है। क्या इस छोटे से मापदण्ड पर हम उस त्याग की विशालता को नहीं आंक सकते जो अपना देश - परिवार, अपना वातावरण, वायुमण्डल, अपना सुख, ऐश्वर्य छोड़कर उस महिमामयी ने किया। और उन्होंने सिर्फ यही नहीं त्यागा, श्रीअरविन्द के चरणों में मौन बैठकर अपना पूर्व अर्जित आध्यात्मिक ज्ञान अनुभव और उपलब्धियाँ भी नये जीवन के लिए उत्सर्ग कर दीं। उन्होंने अपने समस्त अन्तःकरण को एक कोरा पृष्ठ बन जाने दिया जिस पर नये ढंग से नयी रोशनी की किरण से भगवान अपनी इच्छा अंकित कर सकें। वे अपनी डायरी में लिखती हैं-

"मुझे लगता है कि मैं एक नये जीवन में जन्म लेने जा रही हूँ मानों मुझसे मेरा भूतकाल छीन लिया गया है। मेरी मूल भ्रान्तियों के साथ मेरी जीतें भी छीन ली गई है। मैं जानती हूँ कि अब मुझे पूरी तरह अपने - आपको त्याग देना चाहिए और नितान्त एक कोरे पृष्ठ जैसा बन जाना चाहिए, जिस पर हे नाथ, तेरा विचार और तेरी ही इच्छा एकमात्र अंकित हो सके और वह सब प्रकार की विकृतियों से सुरक्षित रहे।"

इस प्रकार हम देखते हैं कि माँ के अन्तिम रूप से भारत आ जाने और श्रीअरविन्द की योग दीक्षा के लिए सम्पूर्ण रूप से अपने 'मैं' को समर्पित कर देने का निर्णय एक मामूली मोड़ नहीं है, उनके परिचय का महज एक पहलू नहीं है, यह भागवत योजना और संकल्प की एक महत सफलता का द्योतक है। बार-बार अपने विषय में पूछे जाने पर उन्होंने कहा था, "मेरे इस भौतिक शरीर और अस्तित्व के बारे में प्रश्न मत करो। यह अपने में कोई बहुत ध्यान देने योग्य बात नहीं है।

इस पूरे जीवन मैं जाने - अनजाने में वही बनी हूँ जो उस प्रभु ने मुझे बनाना चाहा, मैंने वही किया जो उस प्रभु ने मुझसे कराना चाहा, बस यही बात एकमात्र महत्व रखती है।"

1926 में श्रीअरविन्द के पूर्ण एकान्तवास के पश्चात माँ के कार्यक्षेत्र का सृजनभार इतना व्यापक, विस्तृत और विविध हो गया था कि दैवीशक्ति की प्रेरणा और प्रकाश ही उसे सम्पन्न कर सकते थे। वह सतत् स्वार्थ, अहंकार, द्वन्द्व पीड़ित मानव जीवों के लिए अपने को अर्पण करती रहीं कि हम इच्छुक बनें, यह जानने के लिए कि जीवन का सच्चा प्रयोजन क्या है ? असत्

से सत् में, अज्ञान से प्रकाश में और मृत्यु से अमरता में प्रवेश पाने का महत्व क्या है? वे लिखती हैं -

मनुष्य शरीर ग्रहण करते हैं - नहीं जानते क्यों किया ? सारा जीवन उसमें बताते हैं - नहीं जानते क्यों बिताया ? फिर उनका शरीर छूट जाता है और वे नहीं जानते क्यों छूटा ? और इसी क्रिया को बार - बार जन्मान्तरों तक दुहराते जाते हैं अनिश्चित काल तक बिना जाने, बिना पूछे। फिर, एक दिन कोई आता है और उनसे कहता है, सुनो, देखो, तुम जानते हो इस शरीर और इसके जन्म का एक प्रयोजन है और तुम इसी प्रयोजन को जानने और पाने के लिए यहाँ हो - अपना अवसर मत चूको। पर कितने जीवन की व्यर्थता के बाद?

और अज्ञान की यह व्यर्थता माँ को कष्ट देती है। इसमें सन्देह नहीं, यह प्रयोजन और इसे पाने का रास्ता बहुत कठिन है, बड़े साहस और संकल्प शक्ति की अपेक्षा करता है। पर इस पर बढ़ने का एक सहज उपाय भी है कि हम माँ के हाथों में अपनी सत्ता को सौंपना सीखें, उनके बच्चे बनना सीखें, उनका आश्वासन हमारे पास है :

"मैं पृथ्वी के दुख अवसादों में भाग लेने के लिए यहाँ आई हूँ मैंने अपने बच्चों की वेदनाओं को अपनी छाती पर झेल लिया है अनेक खतरों से भरे पृथ्वी के इन बीहड़ रास्तों पर मैं खड़ी हूँ और अभागे पीड़ितों की मदद करती हूँ। जो सबल हैं, उन्हें अपनी शक्ति का कवच देती हूँ।"

मैं तुम सबके साथ बहुत ही गहन रूप से सम्बद्ध हूँ। वे जो सूक्ष्म दृष्टि रखते हैं मुझे अपने भीतर देख सकते हैं। मेरी शक्ति निरन्तर कार्यरत है। वह तुम्हारे अस्तित्व के मनोवैज्ञानिक तथ्यों को लगातार नये मूल्यों में ढाल रही है, तुम्हारी प्रकृति के विभिन्न अंशों को निरन्तर पवित्र कर रही है ताकि तुम यह जान सको कि तुम्हें अपने किस अंश को परिवर्तित करना है, किसे छोड़ना है, और किसे उन्नत करना है।"

श्रीमाँ के कार्य की यही विधि थी। हमारे भीतर के अन्ध भागों को, जड़ित अभ्यासों और आदतों को अपने ज्ञान की सर्चलाइट में देखना - परखना, और तदनुरूप कार्य करना। वह अनन्त क्षमता, शक्ति की अधिष्ठात्री थीं। वही माँ 17 नवम्बर 1973 की संध्या 7 बजकर 25 मिनट पर अपनी देहलीला समाप्त कर अनन्त ज्योति में परिणित हो गयीं और अपनी वृहद् चेतना को धरती पर कण - कण में विकीर्ण कर दिया ताकि हम उनके प्रेम की गरिमा में सदैव लक्ष्य की ओर बढ़ते रहें।

इन महत्तम क्षणों में हम पृथ्वी पर आये हैं, यह हमारी अनन्त जन्मों की अभिलाषा का पर्व है। हम चूकें नहीं, मातृ सेवक बनें, बालक बनें, उनके सैनिक बनें। उनकी विजय का वरदहस्त, उनकी दिव्यवाणी, उनका अनन्त प्रेम हमारे साथ है - उनकी विशाल गोद में हमारी जगह सदैव बनी रहेगी।

प्रेम उनमें इस जगत से भी बड़ा था
पूरा संसार उनके एक हृदय में शरण पा सकता था।

पूर्वप्रकाशित कर्मधारा

तीन गाँठें

अज्ञात

भगवान बुद्ध अक्सर अपने शिष्यों को शिक्षा प्रदान किया करते थे। एक दिन प्रातः काल बहुत से भिक्षुक उनका प्रवचन सुनने के लिए बैठे थे। बुद्ध यथा समय सभा में पहुंचे, पर आज शिष्य उन्हें देखकर चकित थे क्योंकि आज पहली बार वे अपने हाथ में कुछ लेकर आए थे।

करीब आने पर शिष्यों ने देखा कि उनके हाथ में एक रस्सी थी। बुद्ध ने आसन ग्रहण किया और बिना किसी से कुछ कहे वे रस्सी में गाँठें लगाने लगे। वहाँ उपस्थित सभी लोग यह देख सोच रहे थे कि अब बुद्ध आगे क्या करेंगे ? तभी बुद्ध ने सभी से एक प्रश्न किया, मैंने इस रस्सी में तीन गाँठें लगा दी हैं, अब मैं आपसे ये जानना चाहता हूँ कि क्या यह वही रस्सी है, जो गाँठें लगाने से पूर्व थी ?

एक शिष्य ने उत्तर में कहा, गुरूजी इसका उत्तर देना थोड़ा कठिन है, ये वास्तव में हमारे देखने के तरीके पर निर्भर है। एक दृष्टिकोण से देखें तो रस्सी वही है, इसमें कोई बदलाव नहीं आया है। दूसरी तरह से देखें तो अब इसमें तीन गाँठें लगी हुई हैं जो पहले नहीं थीं अतः इसे बदला हुआ कह सकते हैं। पर ये बात भी ध्यान देने वाली है कि बाहर से देखने में भले ही ये बदली हुई प्रतीत हो पर अंदर से तो ये वही है जो पहले थी; इसका बुनियादी स्वरुप अपरिवर्तित है।

सत्य है ! बुद्ध ने कहा, अब मैं इन गाँठों को खोल देता हूँ। यह कहकर बुद्ध रस्सी के दोनों सिरों को एक दूसरे से दूर खींचने लगे। उन्होंने पूछा, तुम्हें क्या लगता है, इस प्रकार इन्हें खींचने से क्या मैं इन गाँठों को खोल सकता हूँ ?

नहीं - नहीं, ऐसा करने से तो ये गाँठें और भी कस जाएँगी, इनका खुलना और मुश्किल हो जाएगा। एक शिष्य ने शीघ्रता से उत्तर दिया। बुद्ध ने कहा, ठीक है, अब एक आखिरी प्रश्न, बताओ इन गाँठों को खोलने के लिए हमें क्या करना होगा ?

शिष्य बोला, इसके लिए हमें इन गाँठों को गौर से देखना होगा, ताकि हम जान सकें कि इन्हें कैसे लगाया गया था, और फिर हम इन्हें खोलने का प्रयास कर सकते हैं।

मैं यही तो सुनना चाहता था। मूल प्रश्न यही है कि जिस समस्या में तुम फँसे हो, वास्तव में उसका कारण क्या है, बिना कारण जाने निवारण असम्भव है। मैं देखता हूँ कि अधिकतर लोग बिना कारण जाने ही निवारण करना चाहते हैं, कोई मुझसे ये नहीं पूछता कि मुझे क्रोध क्यों आता है, लोग पूछते हैं कि मैं अपने क्रोध का अंत कैसे करूँ ? कोई यह प्रश्न नहीं करता कि मेरे अंदर अहंकार का बीज कहाँ से आया, लोग पूछते हैं कि मैं अपना अहंकार कैसे ख़त्म करूँ ?

प्रिय शिष्यों, जिस प्रकार रस्सी में गाँठें लग जाने पर भी उसका बुनियादी स्वरुप नहीं बदलता उसी प्रकार मनुष्य में भी कुछ विकार आ जाने से उसके अंदर से अच्छाई के बीज ख़त्म नहीं होते। जैसे हम रस्सी की गाँठें खोल सकते हैं वैसे ही हम मनुष्य की समस्याएँ भी हल कर सकते हैं। इस बात को समझो कि जीवन है तो समस्याएँ भी होंगी ही, और समस्याएँ हैं तो समाधान भी अवश्य होगा, आवश्यकता है कि हम किसी भी समस्या के कारण को अच्छी तरह से जानें, निवारण स्वतः ही प्राप्त हो जाएगा। महात्मा बुद्ध ने अपनी बात पूरी की।

नववर्ष स्वागत

-मोहन स्वामी

स्वागत है नव वर्ष महान
मंगलमय शुभ वर्ष, नवासी का यह दिव्य महान
शुभ हो सबको, जग को, भारत को, हमको भगवान।
रिद्धि - सिद्धि से भर दो सबको, कर दो सुमति प्रदान
तोड़ - फोड़ मिट जाये सारी - प्रेम बढ़े भगवान
आपस में हो भातृ - भाव, और वैर - भाव श्रीमान्
मिट जाए, सुख शान्ति का हो शुभ साम्राज्य महान।
माँ हम रहें प्रेम से सब ही - करना कृपा प्रदान
याद रखें सब परमेश्वर को - होवे जग कल्याण।

पूर्वप्रकाशित कर्मधारा

भारतीय संस्कृति एवं भावी समाज

श्रीअरविन्द के आलोक में
डॉ. जे.पी. सिंह

"जगत में मनुष्य का पार्थिव लक्ष्य है सच्चा सुख पाना और सच्चा सुख आत्मा, मन और शरीर में सच्चा सामंजस्य स्थापित करने से ही मिल सकता है। इस सामंजस्य को पाने में कोई संस्कृति किस हद तक सफल हुई है, इसी से उस संस्कृति का मूल्यांकन किया जा सकता है। इन चीजों को पाने की कोशिश करने वाली सभ्यता मुख्य रूप से मानसिक और बौद्धिक हो सकती हैं जैसे प्राचीन रोम और यूनान की सभ्यतायें, प्रधानतः भौतिक हो सकती हैं जैसे यूरोपीय सभ्यता या फिर प्रधानतः आध्यात्मिक जैसे भारतीय सभ्यता।"

भारतीय संस्कृति का बिरवा (पौधा) वेदों से निकला था। वेदों ने ही संस्कृति के आदि काल में मनुष्य को भावी उपलब्धियों की एक झाँकी दी थी और हर नूतन सर्वोदय का नूतन रूप में स्वागत करना सिखाया था।

सभी मानते हैं कि अब समय आ गया है जब संसार भर के सभी छोटे-बड़े राष्ट्रों को मिलकर एक विश्व संघ बनाना चाहिए। लेकिन विश्व संघ एक बहुत ही जटिल एकता के आधार पर बनेगा और वह एकता आत्म-निर्णय पर आधारित विभिन्नता की भित्ति पर खड़ी होगी।

आज की राजनीतिक और आर्थिक स्थिति में इस तरह का पुनर्गठन बहुत ज्यादा मुश्किल होगा, लेकिन अगर देशों का स्वतन्त्र संगठन होना है तो सब कठिनाइयाँ लुप्त हो जायेंगी। तब बल और आत्मरक्षा के लिए सैनिक आवश्यकता की दृष्टि से देशों को पास - पास आने की जरूरत न रहेगी। एक स्वाधीन विश्व संगठन में बल प्रयोग निर्णायक का स्थान नहीं ले सकता। तब एकता के आभास की राजनीतिक आवश्यकता भी न रह जायेगी, क्योंकि राजनीति में भी जिसकी लाठी उसकी भैंस का सिद्धान्त चलता है। स्वेच्छा से बने विश्वसंगठन में मतभेद का फैसला बंदूक की गोली से नहीं, समझौते से होगा और जहाँ समझौता न हो पाये वहाँ मध्यस्थता काम करेगी। बड़े देशों की प्रतिष्ठा तभी होगी जब उनके देशवासी एक मन हों, आपसी फूट उनके महत्व को कम करेगी। साथ ही यह भी मानना होगा कि कोई भी देश, कोई भी जाति एक दूसरे से एकदम स्वतंत्र नहीं हैं सभी किसी न किसी रूप में एक दूसरे पर निर्भर हैं। अगर मुक्त रूप से आदान प्रदान हो सके, तो राजनीतिक स्पर्धा के कारण भी कम हो जायेंगे। यह स्पष्ट है कि छोटे देशों को बड़ों के साथ मिलकर रहने में ज्यादा लाभ है। हाँ, जरूरी यह है कि छोटे देशों को अपनी स्वाधीनता प्राप्त हो, वे अपने ढंग से विकसित हो सकें। सारे संसार में एकता का विचार फैल जाए और तथ्य का रूप ले ले, तो हितों की एकता आसानी से दिखायी देने लगेगी।

श्रीअरविन्द कहते हैं -"तो हमारा लक्ष्य क्या होगा? बाहरी हितों और स्वार्थों की साझेदारी नहीं, बल्कि आंतरिक ऐक्य के द्वारा मानव जाति की एकता, केवल पाशविक और आर्थिक जीवन या केवल बौद्धिक और सुरुचि पूर्ण जीवन में से आध्यात्मिक सत्ता की महिमा में मनुष्य का पुनरुत्थान आत्मा की शक्ति को भौतिक ढाँचे और मानसिक यंत्र में ढालना है ताकि मनुष्य अपनी मानवता को उस सच्ची अतिमानवता में विकसित कर सके जो हमारी वर्तमान स्थिति से उसी तरह आगे बढ़ी होगी जैसे हमारी

यह पशु अवस्था से बढ़ी हुई है। ये तीनों एक ही हैं, क्योंकि मानव एकता एवं मनुष्य का आत्मातीत्य (अपने – आपसे परे होना) अपनी आत्मा के अंदर निवास करने से ही आ सकता है।"

एक आध्यात्मिक मानव समाज जीवन संबधी तीन आवश्यक सत्यों से आंरभ करके उन्हें चरितार्थ करने का प्रयत्न करेगा। इन सत्यों की इनके विरोधी तथ्यों द्वारा छिपाना समस्त प्रकृति का प्रयत्न होता है और इसलिए ये अभी तक समूची मानव जाति के लिए शब्द और स्वप्न मात्र हैं। ये सत्य हैं भगवान, स्वतंत्रता और एकता। ये तीनों चीजें एक ही हैं जो एक साथ तुम्हारी उच्चतम सत्ता तथा समस्त प्राणियों की सत्ता को अपने अंदर धारण करती है। स्वतंत्रता और एकता, जिनका नाम तो यही है, वे सचमुच हमारी अधीनता और हमारे विभाजन के ऐसे प्रयत्न हैं जिन्हें मनुष्य आँखे बन्द करके अपने केन्द्र के चारों ओर कलाबाजियाँ खाते हुए, अपने से छुटकारा पाने के लिए करते हैं। जब मनुष्य भगवान को देखने और उन्हें प्राप्त करने में समर्थ हो जायेगा तभी वह वास्तविक स्वतंत्रता को जानेगा तथा वास्तविक एकता को प्राप्त करेगा अन्यथा कभी नहीं। और भगवान तो इस बात की प्रतीक्षा में हैं कि कोई उनका ज्ञान प्राप्त करे, जबकि मनुष्य उन्हें सर्वत्र खोजता हुआ तथा उनकी मूर्तियां बनाता हुआ भी असल में केवल अपने मन और प्राण रूपी अहं की मूर्तियां खोजता है, प्रभावशाली रूप में उनकी स्थापना और पूजा करता है। जब इस, अहंरूपी धुरी को त्याग दिया जाता है और इस अहं का पीछा करना छोड़ दिया जाता है तभी मनुष्य को अपने आंतरिक और बाह्य जीवन में आध्यात्मिकता प्राप्त करने का पहला और वास्तविक अवसर मिलता है। यह काफी तो नहीं है पर यह एक आरम्भ अवश्य है यह एक सच्चा द्वार होगा, अंधकारपूर्ण मार्ग नहीं।

सारे संसार में मूलरूप से एक एकता काम कर रही है। ऊपर चाहे जितनी विभिन्नता हो, जड़ में एकता ही है। विकास विभिन्नताओं में से होता हुआ एक जटिल एकता की ओर जा रहा है। सारी मानव जाति एकता की ओर बढ़ रही है

मैं हमेशा ऊपर की ओर देखती हूँ। 'सौन्दर्य', 'शान्ति', 'प्रकाश' वहाँ मौजूद हैं, वे नीचे आने के लिए तैयार हैं। अतः, हमेशा अभीप्सा करो और उन्हें इस धरती पर अभिव्यक्त करने के लिए देखो। दुनिया की कुरूप चीज़ों की ओर नीचे न देखो। तुम जब कभी दुःखी होओ, मेरे साथ ऊपर देखों।

श्रीमाँ

माँ से प्रार्थना

शैलेन्द्र प्रसाद पाण्डेय

माँ तुम्हारे चरण - रज से
अर्चना का दीप बन लूँ।
माँ तुम्हारे प्रेम जल से
अमिय का शुभ सीप बन लूँ।
माँ तुम्हारी राग सुनकर
नव सृजन के गीत रच लूँ।
माँ तुम्हारी राह चलकर
मंजिलों का शिखर बन लूँ।
माँ तुम्हारी पंखुड़ी से
स्वर्णमय परिधान बन लूँ।
माँ तुम्हारी अंजुली से
अतिमानस का दान बन लूँ।
माँ तुम्हारे उपवनों में
स्वर्ग की ही डाल बन लूँ।
खूब झरते सावनों में
दिव्यता का ताल बन लूँ।
माँ तुम्हारे आँचलों में
कृष्ण सा इक बाल बन लूँ।
टिमटिमाते दिनकरों से
सूर्य सा दिनपाल बन लूँ।
माँ तुम्हारे ही तृणों से
चैत्य का नित नीड़ बन लूँ।
माँ तुम्हारी ही कृपा से
आसमाँ का चीर बन लूँ।
माँ तुम्हारे सूर्य से ही

तिमिर में आलोक बन लूँ।
जगमगायें कोश सारे
एक ऐसा लोक बन लूँ।
माँ तुम्हारे कलि-कणों से
नव सृजन की नींव रख लूँ
मृत्तिका का पात्र बनकर
हर समय बरसात भर लूँ।
माँ पकड़कर अंगुली अब
एक नन्हा डग ही भर लूँ।
माँ तुम्हारी गोद में ही
उम्र का हर काल पल लूँ।
माँ तुम्हारे दिव्य रथ में
सारथी की डोर बन लूँ।
माँ जलाकर सूर्य अन्तर
नव दिवा का भोर बन लूँ।

सावित्री

(विजय (The Victory))

मंगेश नाडकर्णी

"सावित्री" महाकाव्य के अपने संक्षिप्त सर्वेक्षण में अब हम उसके दूसरे भाग तक पहुँचे हैं। इस समापन सत्र में हम महाकाव्य के तीसरे भाग को समेटेंगे जिसमें पाँच पर्व शामिल हैं।

हम पिछले सत्र में पढ़ चुके हैं कि अपनी कई यौगिक अनुभूतियों के फलस्वरूप सावित्री "दिव्यमाता अदिति" के रूप में उभरकर सामने आई हैं और वह मृत्यु का सामना करने के लिए पूर्ण समर्थ हो गई हैं।

इस महाकाव्य के पर्व आठ को "मृत्यु पर्व" शीर्षक दिया गया है और यह लगभग दस पन्नों का अकेला सर्ग है। इस सर्ग में हम सत्यवान और सावित्री को जगंल में साथ-साथ देखते हैं। सत्यवान लकड़ी काट रहा है और सावित्री बहुत गौर से उसे एकटक देख रही है। वह जानती है कि यही वह दिवस है जब सत्यवान को मृत्यु का ग्रास बनना है। सहसा ही सत्यवान को अत्यन्त तीक्ष्ण पीड़ा का अनुभव होता है जिसने उसके शरीर को बुरी तरह झकझोर दिया है। वह वृक्ष से नीचे उतर आता है और सावित्री की गोद में सिर रखकर लेट जाता है। दर्द की पीड़ा और अधिक बढ़ जाती है। वह समझ जाता है कि उसकी मृत्यु का क्षण करीब आ पहुँचा है। वह सावित्री को पुकारता है - "सावित्री, ओ सावित्री ! मेरे ऊपर झुककर मेरा चुम्बन लो। "जैसे ही सावित्री झुककर उसका चुम्बन लेती है, वह मर जाता है।

ऐसी भीषण घड़ी में सावित्री न तो दु:ख से अभिभूत होती है और न ही डर से सिहरती है। एक बृहद् शान्ति उसके अन्दर आती है। उस बियाबान जंगल में चारों ओर घोर नि:स्तब्धता है। वह ऊपर मुँह उठाकर देखती है तो सामने "यमदेव" खड़े हैं। सावित्री उनका सामना करने को प्रस्तुत है। अपने जीवन में आने वाली इसी दारुण घड़ी के लिए उसने अपने को तैयार किया था। जैसे ही यमदेवता सत्यवान की आत्मा को देह से खींचते हैं, सावित्री उठ खड़ी होती है।

यमदेव "शाश्वत" महारात्रि" के क्षेत्र में आगे कदम बढ़ाते हैं। सत्यवान की आत्मा और यमदेव की छाया रास्ते पर आगे बढ़ती है और सावित्री एक दृढ़ हठीलेपन से उस "महारात्रि" के लोक में उनका अनुसरण करती हुई बढ़ती जाती है। इस लोक की विचित्र दृश्यावली अब एक रहस्यमय और गहन अंधकार में बदल जाती है।

महाभारत में यह प्रसंग - सावित्री और यमदेव के बीच हुआ विवाद – एक सामान्य सा प्रभावहीन वार्तालाप है। सावित्री यमदेव के साथ बातचीत करती हुई आगे बढ़ती रहती है और उन्हें अपनी वाणी की नम्रता, मधुरता और चतुराई से प्रसन्न कर लेती है। यमदेव भी प्रसन्न होकर एक के बाद दूसरा वरदान उसे देते जाते हैं और अन्त में वह सत्यान को उनके पंजे से छुटकारा दिला लेती है। सावित्री महाभारत की उस कथा में जो प्रयास करती है वह इतना ही है कि वह यमदेव को अपनी सच्ची और मधुर वाणी से प्रभावित व प्रसन्न कर चतुराई से अन्तिम वर में सत्यवान को जीवित करने की विवशता उनके सामने खड़ी कर देती है और अन्तत: अपने पति को वापस ले जाती है।

श्री अरविन्द के महाकाव्य में सावित्री और मृत्युदेवता के बीच हुआ विवाद एक विकट संघर्ष है जो करीब 125 पन्नों में आया है और सात सर्गों में उसका विवरण है। पर्व नौ, दस, ग्यारह के सभी सर्गों में सावित्री "मृत्यु" के खिलाफ विविध तर्कों द्वारा बातचीत जारी रखती है जबकि वे दोनों "शाश्वत निशा" की भयंकर शून्यता से होकर गुजर रहे होते हैं, फिर अत्यन्त "सघन धूमिला" के लोक से होकर निकल रहे होते हैं और अन्त में जब वे "शाश्वत दिवस" के प्रदेश में से गुजर रहे होते हैं सावित्री सत्यवान को वापस पृथ्वी पर लाना चाहती है ताकि वे दोनों भौतिक जीवन के उस पथ पर साथ - साथ आगे बढ़ते रहें जो प्रभु की ओर ले जाता है। इसी उपलब्धि से मृत्यु का अधिपति यमदेवता उन्हें रोकना चाहता है जो जानता है कि सावित्री वास्तव में कौन है। उसका सत्यवान को वापस पृथ्वी पर लाने का उद्देश्य पृथ्वी पर दिव्य जीवन को प्रस्थापित करने का सांकेतिक निर्णय है। और यही वह निर्णय एवं प्रयास है जिसे काल देवता असफल कर देने के लिए कटिबद्ध हैं। अत: वे कई प्रकार से सावित्री को उनके पीछे-पीछे न आने के लिए डराते हैं एवं फुसलाते हैं और ऐसा करते समय वे एक चालाक कूट - तार्किक की तरह वाद - विवाद करते रहते हैं। वे सभी शंकाओं को तर्कसंगत ढंग से सावित्री के सामने प्रस्तुत करने के प्रयास करते हैं ताकि वह सत्यवान को पुन:जीवन प्रदान करने के अपने निर्णय से विचलित हो जाए। वे अनेकानेक सम्भावित युक्तियाँ पेश करते है लेकिन उनकी कोई दलील कामयाब नहीं होती। अब मृत्युदेवता अपना मोर्चा बदल लेते हैं और एक विद्वान आचार्य के समान मायावाद, शून्यवाद, अस्तित्ववाद तथा आदर्शवाद के सिद्धान्त बखान करने लगते हैं ताकि सावित्री की आकांक्षा दुर्बल पड़ जाय और वह उनका पीछा करना छोड़कर वापस लौट जाय। परन्तु सावित्री इनमें से किसी भी तर्क अथवा बात से प्रभावित नहीं होती और अपने प्रतिवादी की हर दलील को प्रभावहीन कर देती है। इस प्रकार महाकाव्य के इस भाग में श्री अरविन्द अनेक दार्शनिक सिद्धान्तों पर अपना मत देते हुए, उन पर विविध कोणों से प्रकाश डालते हुए उनका विश्लेषण करते हुए अपने योग के आदर्श "दिव्य - जीवन" का समर्थन करते हैं और सिद्ध करते हैं कि जो अनित्य है, नश्वर है, उसका तर्कशास्त्र "नित्य" के गति - विज्ञान को समझने के लिए अधूरा और ना काफी है।

मूल महाभारत कथा में सावित्री से आमना-सामना होने की प्रारम्भिक अवस्था में यमदेवता उसके साहस एवं दृढ़ता से प्रभावित होते देखे गये हैं और उससे वरदान माँगने को कहते हैं। सावित्री उनसे सत्यवान के पिता की खोई हुई दृष्टि और खोये हुए राज्य को पुन: पाने का वरदान माँगती है। यमदेवता उसे वह वरदान प्रदान करते हैं और उससे पृथ्वी पर वापस लौट जाने की अपेक्षा करते हैं।

किन्तु सावित्री उनकी सलाह मानने से इन्कार कर देती है, उनकी सलाह मानने का अर्थ अपने "भाग्य" को स्वीकार कर लेना और पृथ्वी पर लौट जाने का अर्थ है, अपने मूल उद्देश्य से विमुख हो जाना। अब यमराज सावित्री की अभीप्सा और विश्वास पर प्रहार करना शुरू कर देते हैं। सावित्री निरन्तर प्रेम की रूपान्तरकारी शक्ति का समर्थन करती हुई उनके प्रत्येक तर्क को असफल कर देती है। यमराज प्रेम को मात्र हाड़-माँस की चाहना कहकर उसका उपहास करते हुए कहते हैं :

यह प्रेम क्या है जिसे तू देवतुल्य सोचती है,
एक पवित्र आख्यान और कल्पित कथा?
यह तो तेरी देह की जीवन्त तृष्णा है

यह तेरी रगो की उत्कट पिपासा है....
और तो भी कितनी क्षणिक, क्षीण और अल्पकालीन है।
देवताओं द्वारा मनुष्य को दी गई यह अमूल्य निधि व्यर्थ हो गई
यदि सत्यवान जीवित रहता, तो प्रेम मर गया होता
लेकिन चूँकि सत्यवान मृत है, प्रेम जीवित रहेगा
कुछ समय के लिए, तेरे सन्तप्त सीने में, जब तक
उसका मुख और शरीर, तेरी स्मृति की दीवार से धूमिल न हो जाय
जहाँ फिर दूसरे शरीर और मुखड़े आ जाते है।

(पर्व 10, सर्ग 2, पृष्ठ 610)

इस प्रकार यमदेव प्रेम का उपहास करते हुए वैराग्य की प्रशंसा करने लगते हैं। लेकिन सावित्री उनकी किसी भी नीति से प्रभावित नहीं होती। वह प्रेम के अनुपम सत्य और गरिमा से परिचित है। वह कहती है कि प्रेम, धरती और स्वर्ग दोनों का देवाधिदेव हैः

मेरा प्रेम हृदय की भूख नहीं है
मेरा प्रेम देह की तृष्णा नहीं है
यह प्रभु से मुझमें आया और उन्हीं को पुन: अर्पित है
यहाँ तक उस सबमें भी जिसे मानव और जीवन ने किया कलुषित
दिव्यता की एक फुसफुसाहट अभी तक सुनाई पड़ती है
शाश्वत लोकों से आई उष्ण श्वास अनुभूत हुआ करती है।

मृत्युदेव अब फिर अपने तर्क और प्रमाण की नीति को बदल लेते हैं और प्रेम को एक भ्रान्त एवं मूर्खतापूर्ण धारणा साबित करने का प्रयास करने लगते हैं। वे कहते है कि ये प्रेम की भ्रान्त धारणा केवल मनुष्य जीवन तक ही ठीक है। मनुष्य इतना अपूर्ण प्राणी है कि उसे अमरत्व देना एक महान् भूल होगी। यमदेव मनुष्य से जुड़े सभी आदर्शों का वर्णन उसके मन की व्याधियों के रूप में करते हैं और उन्हें मात्र काल्पनिक कथा तथा शब्द एवं विचार की निरर्थक बकवास मानते हैं।

सावित्री उनके बयानों से प्रभावित हुए बिना उनसे कहती है कि वे सच कह रहे हैं पर जो सच संहार करने वाला है। और प्रेम के जिस सत्य को मैं जानती हूँ वह रक्षा करने वाला है। इसी प्रेम के सत्य का प्रमाण मैं प्रस्तुत करुँगीः

ओ मृत्यु! तूने एक अधूरी विश्व-रचना को देखा है
जो तेरे द्वारा हन्त होती है और जिसकी राहें अनिश्चित है
तूने अविकसित मन वाले लोगों और अज्ञानमय जीवन को देखा है

जो कहते हैं कि भगवान् नहीं है और सब निष्प्रयोजन है
कैसे एक बालक एक पूर्ण विकसित मनुष्य हो सकेगा?
हमारी अपूर्णता निरन्तर परिश्रम करती है पूर्णता प्राप्त करने हेतु।

सावित्री मनुष्य की सामर्थ्य और योग्यता की सीमाओं से परिचित है लेकिन वह जानती है कि ये सब भौतिक तत्त्व हैं जिनका किसी महत एवं उत्कृष्ट विधान में परिवर्तित होना दैव-निर्दिष्ट है क्योंकि मनुष्य स्वयं अपने अन्दर निरन्तर एक भारी दबाव महसूस करता है, एक पिपासा से अशान्त रहता है कि उसे किसी ऊँचे प्रयोजन से जुड़ना है जो उसे दिव्य जीवन में प्रवेश एवं परिवर्तित करा सकेः

हमारी पृथ्वी धूल, मिट्टी से अपनी यात्रा शुरु कर महाशून्य में समाप्त करती है
और प्रेम जो पहले एक पशु की वासना मात्र था
फिर बना प्रफुल्ल हृदय में एक मधुर उन्माद
और सुखी मन में एक उत्साही सहचर
अन्ततः हो जाता है एक विशाल आध्यात्मिक अभिलाषा का अन्तरिक्ष।

(पर्व 10, सर्ग 3, पृष्ठ 632)

सावित्री निरन्तर यह स्पष्ट करती जा रही है कि प्रेम ही समस्त पीड़ाओं से मुक्त करने वाला एकमात्र त्राता है जो मनुष्य जाति को अज्ञान से छुटकारा दिलाकर उसे सच्ची चेतना में रहना सिखायेगा। वह यमदेव को अपने पृथ्वी पर आने के उद्देश्य से अवगत कराती है और बताती है कि क्यों वह सत्यवान को वापस पृथ्वी पर लाना चाहती हैः

ओ मृत्यु, अपने हृदय की मधुर एवं तीक्ष्ण लालसा के लिए नहीं
और न केवल देह की परितृष्टि के लिए
मैं तुझसे जीवित सत्यवान का अधिकार चाहती हूँ
वरन् एक पवित्र परिवर्तन के लिए हम दोनों को मिलकर कार्य करना है।
सितारों तले हमारे जीवन प्रभु के सन्देश-वाहक हैं
जो मृत्यु की छाया में रहने के लिए उतरे हैं
वे पृथ्वी तक प्रभु के मोहक प्रकाश को अज्ञ मानव-जाति के कल्याण हेतु लाने के लिए
"उनके" प्रेम से मनुष्य हृदय के खोखलेपन को भरने के लिए
और विश्व के सन्तापों को प्रभु के आनन्द से उपचार करने हेतु यहाँ आये हैं।
क्योंकि "मैं" एक "नारी", प्रभु की शक्ति हूँ
सत्यवान मानव में वास करती शाश्वत "आत्मा" है

ओ मृत्यु! मेरा संकल्प तेरे समूचे नियम से अधिक महान् है।
मेरा प्रेम भाग्य की जकड़ से अधिक बलवान है।
हमारा प्रेम प्रभु की दिव्य मुहर है, छाप है।
तेरे विनाशशील हाथों से, मैं इस "मुहर" की रक्षा करती हूँ।
प्रेम को इस पृथ्वी का त्याग नहीं करना चाहिए
क्योंकि प्रेम ही धरती एवं स्वर्ग के बीच एक स्वर्णिम सेतु है।
प्रेम ही इस धरा पर दूरगामी परमोत्कृष्ट देवदूत है-
प्रेम ही मानव को प्रभु से प्राप्त उत्तराधिकार है।

(पर्व 10, सर्ग 3, पृष्ठ 633)

अब मृत्युदेवता सावित्री से अपनी बातचीत का पैंतरा फिर बदल लेते हैं और पूछते हैं कि मनुष्य जो कि नश्वर तत्त्वों से बना है, वह कैसे अनश्वर आत्मा और "नित्य" प्रभु से एक हो सकता है? जैसा यह सांसारिक जीवन है, भगवान् ने इसे ऐसा ही बनाया है। इसे बदलने की बात करना और प्रयास करना मन की भ्रामक भूल है। यदि मुक्ति, आनन्द और अमरता कभी उपलब्ध हो सके हैं तो मृत्यु के पश्चात ही दूसरे लोक में पाये जा सके हैं। जब तक मनुष्य इस देह का बाना पहना रहता है वह किसी ऊँचे महान् सत्य का अनुभव नहीं कर सकता, केवल यह अपूर्ण जग-जीवन जो अज्ञान, पीड़ा, कठिनाई और दोषों का विषय है, उन्हीं के अधीन रहने को बाध्य है। सावित्री को प्रेम और सत्यवान के बारे में भूल जाना चाहिए और इस पृथ्वी की उपेक्षा कर भगवान की ओर मुड़ जाना चाहिए। वे घोषणा करते हैंः

"मैं "मृत्यु" ही "अमरता" का द्वार हूँ।"

सावित्री निरुत्तर नहीं हुई। वह तर्क देती हुई कहती है कि यदि यह सृष्टि एक अर्थहीन शून्य से बाहर प्रकट हो सकती है, यदि पदार्थ ऊर्जा से बाहर आ सकता है, जीवन पदार्थ से सृजित हो सकता है और मन जीवन से, तथा यदि आत्मा नश्वर देह के द्वारा दृष्टिगोचर हो सकती है तब इस प्रत्याशा में क्या संदेह है, क्या बुराई है कि आज का अर्धविकसित मनुष्य कभी आगामी भविष्य में भगवान के पूर्णत्व को पा सके, दिव्य गुणों में परिवर्तित हो सके। आज भी मनुष्य में वह लक्षण पाये गये हैं जो इसके भावी जीवन को भगवान में परिवर्तित होने की संभावना से युक्त हैंः

तब कौन रोक सकता है भगवान को अन्दर प्रवेश करने से ?
कौन उसको मना कर सकता है निद्रित आत्मा का चुम्बन लेने से?
वे सत्य हैं और सदा ही हमारे निकट हैं
लेकिन वे खड़े हुए हैं अनन्तता के ज्योतिर्मय छोर पर।
मैंने यह जान लिया है, यह विश्व "वह" है
लेकिन मैंने अपने प्रभु की इस देह को भी प्यार किया है,

मैंने उसके प्राथमिक रुप का भी अनुसरण किया है,
लेकिन मात्र अपनी ही मुक्ति नहीं कर सकती है मुझे तुष्ट।
मैं एक ऐसा हृदय हूँ जो समस्त हदयों से एक होकर पोषित होता है
मेरी आत्मा की मुक्ति मैं सबके लिए माँगती हूँ।

(पर्व 10, सर्ग 4, पृष्ठ 641)

इस प्रकार मृत्युदेव हर कोण, हर बिन्दु पर सावित्री से मात खाते जा रहे हैं। धीरे-धीरे वे अपने अधिकार, शक्ति, दर्प और हैसियत को खोते जा रहे हैं। अब वे सावित्री को आखिरी चुनौती (start from here) देते हैं कि वह जो इतनी बड़ी-बड़ी बातें बखान कर रही है, अपनी शक्ति को प्रकट करे, अपने बल को अनावृत करे, सामने लाए ताकि वे स्वयं भी उसके अमरता के अधिकार के दावे को जाँच सकें।

और सहसा सावित्री में एक विलक्षण परिवर्तन परिलक्षित होता है। उसमें निहित महान् "दिव्य मातृ-शक्ति' अपना आवरण उठाकर फेंक देती है और स्वयं को अनुपम, अवर्णनीय शोभा के साथ प्रकट करती हैः

ईश्वरीय प्रकाश के उस जाज्वल्यमान क्षण में
शरीरधारी आत्मा ने उठाकर फेंक दिया अपना आवरण
उस अनन्तता में एक लघु आकृति खड़ी थी
तथापि प्रतीत होती थी उसी "शाश्वत" प्रभु का एक घर
मानो जगत का केंद-बिन्दु उसी की वह अपनी "आत्मा" थी,
और समस्त विशाल अन्तरिक्ष उसी का बाहरी परिधान था
अमरता ने भेदक दृष्टि से "मृत्यु" की आँखो में देखा
और "महातमस" ने देखा प्रभु के प्रत्यक्ष जीवन्त आकार को।

(पर्व 10, सर्ग 4, पृष्ठ 664-65)

सावित्री का यह विश्वरूप उसके वास्तविक स्वरुप का दर्शन, मृत्युदेव पर हुआ आखिरी प्रहार है। वह उस "प्रकाश" से कंपकपा जाता है। प्रकाश उसे ढंक लेता है, उसकी रंगों में प्रवाहित होने लगता है और उसकी कालिमा को इतना निगल लेता है कि अब वहाँ मृत्युदेव के पूर्व रुप का कोई निशान नहीं रहता। वह सत्य एवं प्रेम के देवता के रुप में रुपान्तरित हो जाता है, विराट बन जाता है, हिरण्यगर्भ हो जाता है। सावित्री ने अब मृत्यु को परास्त कर दिया है लेकिन अभी उसकी दैवी परीक्षा का अन्त नहीं हुआ है। एक नवीन देवता, मृत्युदेवता का रुपान्तरिक स्वरुप, अपना अन्तिम प्रयास उसे पृथ्वी पर दिव्य जीवन की कल्पना एवं निर्णय के प्रयास से विमुख होने के लिए करता है। वह कहता है कि जिस रुपान्तर की वह आशा कर रही है, वह पृथ्वी पर प्राप्त नहीं किया जा सकता।" इसलिए वह सावित्री को स्वर्ग में आने की सलाह देता हैं और कहता है कि वह और सत्यवान प्रेम के आनन्द को वहाँ अनन्त काल तक भोग सकते है। लेकिन तब उसे पृथ्वी के विषय में सब कुछ भूल जाना होगा।

सावित्री इस प्रलोभन में नहीं आती। वह इन्कार कर देती है क्योंकि वह किसी एकान्तिक स्वर्ग में, अपने और सत्यवान के लिए ही प्रेम का सुख नहीं चाहती। उसके जीवन का एकमात्र ध्येय उस असम्भव माने गये कार्य को पूरा करना है अर्थात् पृथ्वी पर प्रभु की शक्ति को लाकर सम्पूर्ण जीवन का रुपान्तर करना हैः

जैसे मैंने वर्जित कर दिया है तेरी "महानिशा' को
मुझे नहीं चढ़ना है उस "अमर दिवस" की ओर
पृथ्वी ही वीर आत्माओं की चुनी हुई भूमि है,
पृथ्वी ही वीर आत्माओं की युद्ध-भूमि है,
पृथ्वी ही वह कल्पना है जहाँ कुशल कारीगर अपने कार्य का रूप देते हैं।
अपेक्षाकृत स्वर्ग की तमाम स्वच्छन्दताओं के,
पृथ्वी पर तेरे सेवा कार्य अधिक महान् और श्रेष्ठ हैं
कष्ट पा रहे मनुष्य से बहुत दूर है तेरे स्वर्ग मेरे लिए,
अपूर्णता वह सुख है जो सबके द्वारा नहीं बाँटा गया।

(पर्व 11, सर्ग 1, पृष्ठ 686-87)

यह रूपान्तरित देवता सावित्री की चिर-कल्याणी अभीप्सा के प्रति सहानुभूतिशील है। पर उसे यह अचरज होता है कि पृथ्वी स्वर्गिक ऊँचाइयों तक भी उठे और फिर भी पृथ्वी बनी रहे, यह कैसे सम्भव हैं? अनेक सन्तों एवं ऋषियों ने मानवता को महान् ऊँचाइयों तक उठाने के अनेक प्रयास किये हैं किन्तु कोई भी उपलब्धि अभी तक स्थायी नहीं हो पाई और मानवता जरा सा मौका पाते ही वापस कीचड़ मिट्टी में फँस जाती है। समय बड़ा बलवान है, वो ही कभी न कभी पृथ्वी की इस समस्या को हल कर सकेगा। वह रूपान्तरित देवता सावित्री को उस समय की धैर्यपूर्वक प्रतीक्षा करने की सलाह देता है जब "समय" ही अन्तिम रूप से मनुष्य को उसकी अयोग्यताओं एवं अपूर्णताओं से छुटकारा दिलायेगा। सावित्री उस देववाणी को बताती है कि इस विश्व को प्रभु तक उठाने का महान् कार्य उसे सौंपा गया था। वह स्वीकार करती है कि मनुष्य अपनी वर्तमान अवस्था के रहते उस परमानन्द को नहीं पा सकता, उसे ग्रहण करने व अनुभव करने के लिए मनुष्य को इन्द्रियातीत बनना होगा और उन सीमाओं को तोड़ना होगा जो अब तक उसे नीचे जकड़े हुए है, बन्दी बनाये हुए हैंः

चूँकि भगवान ने बनाया है पृथ्वी को
पृथ्वी को भी अपने अन्दर बनाना चाहिए, भगवान को
जो कुछ उसके सीने में छिपा है, उसे उद्घाटित करना चाहिए।
यदि मनुष्य अपनी मानवीयता में बंधा रहता है
यदि वह अपनी पीड़ाओं से सदा के लिए जकड़ा रहता है

तब उससे महान् एक "महासत्ता" को उसके भीतर से उठना होगा।

एश्री अरविन्द के सन्देश का सार-तत्त्व यही है कि मनुष्य मन की जिन संकीर्ण परिधियों में बंदी है, मन के दासत्व में बंधा हुआ है उसे उससे मुक्त होना होगा और अतिमानस के भव्य स्तरों तक पहुँचना पूर्व-निर्दिष्ट है। यही मूल कारण है संकटों एवं संघर्षों की उस लम्बी परम्परा का, जिसका मानवता निरन्तर सामना करती रही है। वस्तुत: मुख्य संकट विकास-क्रम का संकट है। मनुष्य को मन के संकीर्ण धरातल से ऊपर उठना ही होगा, इससे कम कोई प्रयास उसे इन संकटों से नहीं बचा सकेगा जो बढ़ते-बढ़ते एक दिन महाविनाश में बदल जायेंगे।

यदि यही वह लक्ष्य है जो सावित्री मनुष्य के लिए हासिल करना चाहती है तो उसे आत्मा की कालविहीनता (timeless-ness) तक उठना होगा और वहाँ से अपने संकल्प का बल काल (time) पर डालना होगा। यही वह क्षेत्र है जो कालदेवता की पकड़ से ऊपर उठा हुआ है। चूँकि सावित्री उस लोक तक पहुँच चुकी है, मृत्युदेव अपने नये रूपान्तरित रूप में भी वहाँ नहीं रह सके, अत: विलुप्त हो जाते है; और यही मृत्यु का अन्त है। जब मृत्यु का अन्त हो चुका होता है, एक नयी रहस्यमयी शक्ति जैसे विमुक्त हो जाती है और रचित सृष्टि का पूरा ढाँचा नींव से हिलने लगता है। इसी समय सावित्री को एक कड़क आवाज सुनाई देती है जो उसे चार बार दोहराती हैः

"चयन कर ले, चयन कर ले, चयन कर ले?" और आप जानते हैं कि सावित्री क्या चयन करती है? वह चुनती है- **प्रभु की शान्ति, प्रभु की एकता, प्रभु की शक्ति और प्रभु का आनन्द।** और यह चयन वह मनुष्य और पृथ्वी के लिए करती है। इस प्रकार सावित्री अपने अवतरण के हेतु को पूरा करती है। जिस हेतु के लिए भगवान् पुन:-पुन: नीचे आते हैं और भू-जीवन एवं मानव-मन में नव चेतना एवं विकास के नये परिवर्तन लाते हैं। आप चाहें तो इसे समाजवाद और यथार्थवाद की संज्ञा भी दे सकते हैं किन्तु एक अन्य प्रकार का समाजवाद, उच्च मूल्यों की ओर उन्मुख यथार्थवाद। श्री अरविन्द के योग एवं उनकी आध्यात्मिकता का समस्त प्रयास मानवता के लिए "पूर्णत्व" लाना है और वह भी यहीं इसी पृथ्वी पर। लेकिन इसे साधने के लिए एक समग्र क्रान्ति की आवश्यकता है। केवल सामाजिक, आर्थिक और राजनीतिक क्रान्ति पर्याप्त नहीं है, मानव-चेतना में एक मौलिक रूपान्तर करना ही होगा। उनकी सावित्री इसी रूपान्तर की अनवरत गूँजती 'पुकार' है, उद्घोषण करने वाली वाणी है जो मनुष्य के लिए इस नयी क्रान्ति को सफल बनाने हेतु दी गई है। अब वह रहस्यमयी शक्ति भी सावित्री-सत्यवान को अकेला छोड़ दृश्य-पटल से हट जाती है। अब वे दोनों धीरे-धीरे समूचे वातावरण में व्याप्त एक परमहितैषी शक्ति की उपस्थिति का अनुभव करते हैं। यह शक्ति सावित्री की अपने लक्ष्य के प्रति एकनिष्ठा की भूरि-भूरि प्रशंसा करती है और उन दोनों पर उनके ध्येय की सफलता के लिए आशीर्वाद की बौछार करती हैः

ओ सत्यवान, ओ तेजस्विनी सावित्री!
इस गगन तले मैंने पूर्वकाल में भी भेजा था
प्रभु की युगल शक्ति को इस धरती पर
मरणधर्मी मनुष्य में विचरण करेगा अतिमानव
और अभिव्यक्त करेगा छुपे हुए अर्धदेवता को
तब एक "समग्र" परितर्वन लक्षित होगा, एक अनूठा नियम आकर

इस यान्त्रिक विश्व को अधिकृत कर लेगा,
एक अधिक बलशाली जाति इस भूलोक की वासी होगी,
आत्मा स्थूल नेत्रों द्वारा बाहर देखेगी
और जड़ जगत प्रकट करेगा आत्मा के मुख-मण्डल को
स्थूल प्रकृति अन्तर्यामी प्रभु को अभिव्यक्त करने हेतु जीयेगी
आत्मा मानवी खेल को ग्रहण करेगी
और पृथ्वी-जीवन होगा रूपान्तरित "दिव्य-जीवन" में।

इस सर्व-समर्थ प्रभु से सफलता का यह आशीर्वाद एवं अनुमोदन पाकर कि पृथ्वी-जीवन दिव्य -जीवन में परिणित होगा, सावित्री और सत्यवान पृथ्वी पर वापस लौटते हैं और यह अद्भुत महाकाव्य एक संक्षिप्त उपसंहार के साथ पूरा हो जाता है जिसमें हमें बताया गया है कि कैसे वे दोनों अपने स्वजनों से मिलते हैं और किन-किन नयी परिवर्तित स्थितियों में उनका आनन्ददायक मिलन होता है। अब हम भी "सावित्री" के इस संक्षिप्त परिचय को सावित्री के विषय में माताजी द्वारा कही इन पंक्तियों के साथ समाप्त करते हैं :

"मेरे बच्चे, सावित्री में सब कुछ है, सब कुछ- रहस्यवाद"

गुह्यवाद, दर्शन, विकास-क्रम का इतिहास, मनुष्यों व देवताओं का इतिहास, सृष्टि एवं प्रकृति का इतिहास कैसे विश्व की रचना हुई, क्यों और किस प्रयोजन के लिए, किस लक्ष्य के लिए? इसमें सब कुछ दिया हुआ है। तुम इसमें अपने सभी प्रश्नों के उत्तर पा सकते हो। इसमें हर बात का स्पष्टीकरण किया गया है, यहाँ तक कि मनुष्य का भविष्य भी इसमें दर्शाया गया है। विकास-क्रम का भावी स्वरुप, यह सब कुछ जिसके विषय में अभी कोई नहीं जानता है, श्री अरविन्द ने बड़ी सुन्दरता एव स्पष्टता से इसमें वर्णित किया है, ताकि वे आध्यात्मिक अन्वेषक जो विश्व के रहस्यों को हल करना चाहते हैं, उन रहस्यों को और अधिक सरलता से समझ सकें। लेकिन ये रहस्य इस अद्भुत रचना की पंक्तियों के पीछे छिपे हुए हैं और जो उनको जानना चाहता है, उसे इन्हें खोजने के लिए "सत्य-चेतना" को हासिल करना चाहिए। समस्त भविष्यवाणियाँ, वह सब जो आगे होने जा रहा है, एक विशेष एवं अद्भुत ढंग से इसमें प्रस्तुत कर दिया गया है, श्री अरविन्द ने तुम्हें सत्य उपलब्ध करने की, सच्ची चेतना को ढूँढ निकालने की कुंजी थमा दी है ताकि प्रकाश वहाँ भेदन कर सके और उसे रूपान्तरित कर सके। उन्होंने वह रास्ता दिखाया है जिस पर चलकर मनुष्य स्वंय को अज्ञान से मुक्त कर सकता है और सीधे उच्च चेतना के धरातल तक चढ़ सकता है। तुम इसमें (जीवन की) समूची यात्रा का विस्तार से विवरण पाओगे और जैसे-जैसे तुम आगे बढ़ोगे, तुम उन अपरिचित तथा अनजानी सभी बातों को खोज सकोगे जिनसे अभी तक मानव-जीवन अनभिज्ञ है। वही "सावित्री" है और इससे भी कही अधिक है।"

सावित्री एक संक्षिप्त परिचय

श्रीमाँ की प्रार्थनाओं से उठती अभीप्सा-सुगंध

श्रीमाँ

तू पूर्ण ज्ञान है असीम चेतना है। जो तेरे साथ एक हो जाता है वह भी जब तक एकत्व रहता है तब तक के लिए सर्वज्ञ हो जाता है। किन्तु इस अवस्था को प्राप्त करने से पहले भी जो अपनी सत्ता की पूर्ण सत्यता में, अपनी समस्त इच्छाशक्ति के साथ तुझे समर्पित कर चुका है और जिसने अपने अन्दर और अपने समस्त प्रभाव क्षेत्र में तेरे प्रेम के दिव्य विधान की अभिव्यक्ति और विजय में सहयोग देने के लिए पूरा प्रयत्न करने का निश्चय कर लिया है, देखता है कि उसके जीवन का सब कुछ बदल गया है और सब घटनाओं में तेरे विधान को व्यक्त करना और उसके अपने समर्पण को सहज बनाना प्रारम्भ कर दिया है कि जो कुछ भी उसके लिये घटता है वही सर्वश्रेष्ठ होता है। कि एक दयालु शक्ति है जो उसकी, स्वयं उससे भी रक्षा कर रही है और ऐसी अनुकूल परिस्थितियाँ जुटा रही हैं कि उसका विकास और रुपान्तर, पूर्ण विकास व रुपान्तर और सार्थकता सिद्ध हो सके। इसके प्रति सचेतन होते ही - विश्वास जमा लेते हैं त्यों ही हमें आनेवाली परिस्थितियों की और घटनाक्रम के विकास की कोई भी चिन्ता नहीं रहती। परम शान्ति के साथ हम वही करते हैं जो हम सर्वश्रेष्ठ समझते हैं, हमें यह विश्वास होता है कि इसका परिणाम सर्वश्रेष्ठ ही होगा, चाहे यह वह परिणाम न भी हो जिसकी आशा, हम अपनी सीमित बुद्धि में कर रहे हैं ।

प्रभु, इसीलिए हमारा हृदय निर्मल है, हमारा विचार 'विश्रांति' का अनुभव कर रहा है। इसीलिए हम अपने समस्त विश्वास के साथ तेरी ओर मुड़ते हैं और शान्तिपूर्वक कहते हैं:

तेरी इच्छा पूर्ण हो इसी में सच्ची समस्वरता चरितार्थ होगी। तुझसे परिपूर्ण मेरा हृदय अनन्त तक फैलता हुआ प्रतीत हो रहा है और तेरी उपस्थिति से उद्भासित मेरी बुद्धि स्वच्छतम हीरे सी चमक रही है। तू अद्भुत जादूगर है। जो प्रत्येक वस्तु को रुपांतरित कर रहा है। जो असौन्दर्य से सौन्दर्य, अन्धकार से ज्योति, कीचड़ से निर्मल जल, अज्ञान से ज्ञान और अहंकार के

अन्दर से दयालुता उत्पन्न करता है।

तेरे अन्दर, तेरे द्वारा, तेरे लिए ही हम जीते हैं और तेरा विधान ही हमारे जीवन का सर्वोच्च स्वामी है ।

तेरी अनुभुति प्राप्त करने तथा तेरे लिये अभीप्सा करने के लिये हमें पहले अवचेतना के विशाल सागर से बाहर निकलना होगा, अपने आपको निर्मल बनाना, आत्मदान करने के लिये अपने आपको जानना तथा अपनी सत्ता की रुपरेखा को समझना प्रारम्भ कर देना होगा, क्योंकि केवल वही आत्मदान कर सकता है जो अपने स्वरुप को अधिकृत कर लेता है। बहुत कम व्यक्ति ही इच्छापूर्वक इन प्रयत्नों में अपने आपको लगाते हैं। धीरे-धीरे, सब बाधाओं के होते हुए भी तेरा कार्य पूरा होने लगता है ।

क्षितिज कितना विस्तृत हो जाता है, ज्यों ही हम इस वृत्ति को ग्रहण करना सीख जाते हैं, सब प्रकार की चिन्तायें समाप्त हो जाती हैं और अपना स्थान स्थिर प्रकाश को, नि:स्वार्थता की समस्तशक्ति को दे देती हैं !

हे प्रभु, जो तू चाहे वही चाहने का अर्थ है तेरे सतत सम्पर्क में निवास करना, समस्त घटनाओं से मुक्त होना, समस्त संकीर्णताओं से बचना, अपने फेफडों को शुद्ध और स्वास्थ्यकारी वायु से भरना, निरर्थक भ्रांति से छुटकारा पाना, समस्त कठिन बोझों से हलका होना जिससे व्यक्ति अपने चौकस पगों से उस एकमात्र लक्ष्य की ओर दौड़ सके जो प्राप्त करने के योग्य है और वह है तेरे दिव्य विधान की विजय !

हे प्रभु, प्रेम के दिव्य स्वामी, उनकी चेतना और उनके हृदय को आलोकित कर। अपनी करुणा के कारण तू समस्त सद्भावना को उचित विकास प्रदान करता है ऐसी कृपा कर कि तेरी उत्कृष्ट उपस्थिति की परम शांति उनके अन्दर जागृत हो जाए !

वर्तमान अभिव्यक्ति में सब कुछ अनिवार्य रूप से मिलाजुला है। सबसे बुद्धिमत्ता की बात यह होगी कि हम यथाशक्ति श्रेष्ठतम प्रयत्न करें, उत्तरोत्तर उच्च प्रकाश की प्राप्ति के लिए प्रयत्नशील हों और यह स्वीकार करें कि चरम पूर्णता इसी क्षण चरितार्थ नहीं हो सकती।

फिर भी हमें क्या उस अगम पूर्णता के लिए उत्साह-पूर्वक अभीप्सा नहीं करनी चाहिए ?

जब कोई भला या बुरा काम हो जाए उस समय जो सच्चा विचार व्यक्ति के अन्दर आना चाहिए वह यह नहीं कि मुझे कार्य अधिक अच्छी तरह करना चाहिए था इसकी जगह यह करना चाहिए था वरन् यह कि - "मैं उस नित्य चेतना के साथ पर्याप्त रूप में एक नहीं हुआ था मुझे इस निश्चित और पूर्ण ऐक्य को अधिकाधिक चरितार्थ करने का प्रयत्न करना चाहिए।

इस उपलब्धि को पूर्ण बनाने के लिए यह एक ऐसी चीज है जिसकी आशा मैं भारतवर्ष की यात्रा से करती हूँ, पर हाँ तभी, यदि तू हे प्रभु! इसे अपनी सेवा के लिए उपयोगी समझता हो,ऐसी कृपा कर कि मैं तेरा कार्य कर सकूँ, तेरी पूर्ण अभिव्यक्ति में योग दे सकूँ।

मैं जानती थी कि तेरी उपस्थिति के लिए आह्वान करना कभी निरर्थक नहीं जाता और यदि हम अपने हृदय की सच्चाई से किसी भी शरीर द्वारा, वैयक्तिक शरीर अथवा मानवीय सामूहिक सत्ता द्वारा, तेरे साथ सम्पर्क स्थापित करें तो उस शरीर की अवचेतना - अज्ञान के रहते भी - पूर्णतया रूपांतरित हो जाती है।

प्रभु मेरी तीव्र कृतज्ञता तेरी ओर उठ रही है, जिसमें दुःखी मानव जाति की कृतज्ञता भी शामिल है जिसे तू आलोकित, रूपांतरित और गौरवान्वित करता है, गौरव तथा ज्ञान की शांति प्रदान करता है।

अपने प्रस्थान के समय से सदा अधिकाधिक ही, हम वस्तुओं में तेरा दिव्य हस्तक्षेप देख रहे हैं,सर्वत्र ही तेरा विधान

अभिव्यक्त हो रहा है और मुझे इस बात का आंतरिक विश्वास हो जाना चाहिए कि यह सहज और स्वाभाविक है, जिससे मैं आश्चर्य पर आश्चर्य न अनुभव करती रहूँ।

किसी भी क्षण मुझे ऐसा प्रतीत नहीं होता कि मैं तुझसे बाहर रहती हूँ और क्षितिज मुझे कभी इतना विशाल और गहराइयाँ इतनी आलोकित और इतनी अथाह कभी प्रतीत नहीं हुईं।

ओ दिव्य गुरु, वर दे कि हम पृथ्वी पर अपने कार्य को अधिकाधिक जान जाएँ और अधिक से अधिक अच्छी तरह सम्पन्न कर सकें। हम अपने अन्दर की समस्त शक्ति का पूर्णतया उपयोग करें, और तेरी सर्वोच्च उपस्थिति हमारी आत्मा की नीरव गहराइयों में, हमारे समस्त विचारों, भावों तथा कर्मों में उत्तरोत्तर पूर्ण रूप से व्यक्त हो।

तुझे इस प्रकार सम्बोधन करना मुझे कुछ विचित्र सा लगता है। क्योंकि तू ही तो मेरे अन्दर निवास करता है, विचार करता है और प्रेम करता है।

तू, जिसे हमें जानना चाहिए, समझना चाहिए उपलब्ध करना चाहिए, हे पूर्ण चैतन्य, सनातन, नियम तू जो हमारा पथ - प्रदर्शन करता है, हमें आलोकित, निर्धारित तथा प्रेरित करता है ऐसी कृपा कर कि ये निर्बल आत्माएँ सशक्त हो सकें और भीरु पुनः आश्वस्त हो उठें। इस सबको मैं तेरे हाथों में उसी तरह सौंपती हूँ जैसे मैं सबकी भवितव्यता तुझे सौंपती हूँ।

उनकी उपस्थिति में- जो तेरे पूर्ण सेवक हैं, जो तेरी उपस्थिति की पूर्ण चेतना उपलब्ध कर चुके हैं - मैंने यह अतिशय रूप में अनुभव किया कि मैं अभी उससे, जो मैं चरितार्थ करना चाहती हूँ दूर, बहुत दूर हूँ। और अब मैं जान गई हूँ कि जिसे मैं उच्चतम, श्रेष्ठतम और पवित्रतम समझती हूँ वह, उस आदर्श की तुलना में जिसे अब मुझे मानना होगा, अंधकार और अज्ञान है। परन्तु यह अनुभव, निरुत्साहित करना तो दूर रहा, अभीप्सा एवं साहस को तथा बाधाओं पर विजय पाकर अंत में तेरे विधान और तेरे कर्म के साथ तद्रूप हो जाने के संकल्प को प्रेरित तथा पुष्ट करता है।

थोड़ा - थोड़ा करके आकाश स्पष्ट होता जा रहा है। रास्ता-साफ़ होने लगा है और हम उत्तरोत्तर अधिक निश्चयात्मक ज्ञान में बढ़ते जा रहे हैं।

अधिक चिन्ता नहीं यदि सैंकड़ों मनुष्य अंधकार में डूबे हुए हैं। वे, जिन्हें हमने कल देखा है - वे तो पृथ्वी पर ही हैं। उनकी उपस्थिति इस बात का काफ़ी प्रमाण है आश्वासन है कि एक दिन आयेगा जब अंधकार प्रकाश में परिवर्तित हो जाएगा, जब तेरा राज्य धरती पर कार्य - रूप में स्थापित होगा।

हे नाथ, इस आश्चर्य के दिव्य रचैयिता, जब मैं इसका चिन्तन करती हूँ तो मेरा हृदय आनन्द और कृतज्ञता से उमड़ उठता है और मेरी आशा असीम हो जाती है।

मेरा आदर शब्दातीत हो जाता है,

मेरी अर्चना गम्भीर हो जाती हैं।

पूर्वप्रकाशित कर्मधारा1988

सच्ची भेंट

निवारण चन्द्र

जब श्रीमाँ अपने भौतिक शरीर में थीं उस समय उनके बहुत से भक्त श्रीमाँ जी को भेंट भेजा करते थे और यह भेंट की रकम सैकड़ों, हजारों और लाखों रुपये तक की होती थी। इनमें से एक भक्त ऐसे भी थे, जो केवल दो रुपये ही भेजते थे लेकिन भेजते नियमित रूप से थे। प्रत्येक माह, उसमें कोई व्यतिक्रम नहीं होता था। यह सभी धनराशि एक रजिस्टर में लिखी जाती थी। जिसे श्रीमाता जी बड़े गौर से देखा करती थीं।

कुछ वर्षों के बाद श्रीमाँ ने अचानक एक दिन देखा कि उन्हें दो रुपये प्रति माह मिलने वाली भेंट बन्द हो गई है। श्रीमाँ ने कई माह तक इन्तजार किया लेकिन वे दो रुपये नहीं आये। तब श्रीमाँ ने सचिव को बुलाया और उस व्यक्ति की खोज खबर लेने का उन्हें निर्देश दिया और साथ ही यह भी कहा कि यदि उस पर कोई आर्थिक संकट है तो उसकी सहायता की जाए।

मनीआर्डर फार्म की चिट से उस व्यक्ति का पता मालूम किया गया और आश्रम के दो साधक जा पहुंचे उसके गाँव जहाँ पर एक टूटे फूटे घर में उक्त भक्त रहते थे। आश्रम के साधकों को उनकी इस दीन हीन स्थिति पर बहुत तरस आया। उन्होंने उनकी पूरी रामकहानी सुनी और उन्हें पता चला कि इस बीच भक्त की एकमात्र जीविका जो पोस्ट आफिस की नौकरी थी ,छूट गई है तब से वह भारी आर्थिक संकट में है। 25 रुपये मासिक की यह नौकरी ही उनकी जीविका का एकमात्र सहारा थी।

इस पर आश्रम के साधकों ने भक्त को 25 रुपये दिये और कहा कि लीजिए ये रुपये आपके लिए माता जी ने भेजे हैं। यह सुनते ही भक्त की कृतज्ञता का बाँध टूट गया और अविरल रूप से उनकी आँखों से आँसुओं की धारा प्रवाहित होने लगी। धन्य है श्रीमाँ की करुणा जो उसने मुझ जैसे अकिंचन की सुध ली।

फिर तो श्रीमाता जी के निर्देश से प्रतिमाह 25 रुपये उन भक्त को आश्रम से मनीआर्डर पहुँचने शुरू हो गये। मनीआर्डर के साथ-साथ श्रीमाँ की कृपा भी पहुँची और इस कृपा से अब उन भक्त की पहले से अच्छी नौकरी लग गई, उन्हें अधिक वेतन मिलने लगा, उनकी आर्थिक समस्या सुलझ गई और उनका परिवार खुशहाल हो गया। अब उन्होंने आश्रम से सहायता लेना बन्द कर दिया और 25 रुपये प्रतिमाह से भी अधिक मनीआर्डर आश्रम को नियमित रुप से भेजना शुरू कर दिया। श्रीमाँ ने उन रुपयों को अपने माथे से लगाया और आश्रम के साधकों से कहा कि 'यह है सच्ची भेंट। जो धन अपनी आवश्यकताओं से बचाकर भगवान को दिया जाता है वही सच्ची भेंट है जो कहीं लाखों रुपयों की भेंट से बड़ी है।'

ऐसी थीं हमारी करुणामयी माँ।

स्थापना-दिवस

(12 फरवरी 1956)

सुरेन्द्रनाथ जौहर

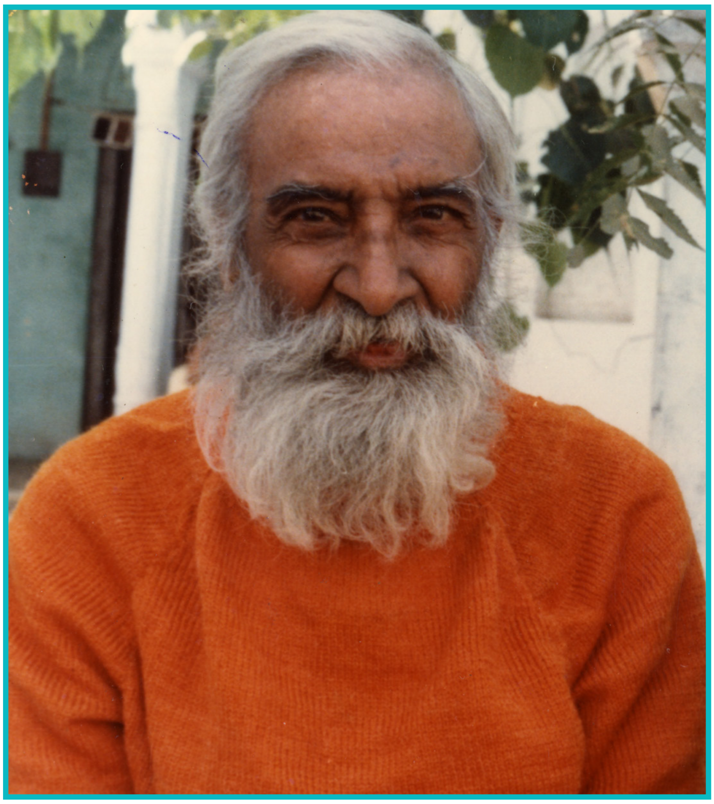

जब मैं श्रीअरविन्द आश्रम की दिल्ली शाखा के इतिहास के संबंध में पीछे मुड़कर देखता हूँ तो मैं इस नतीजे पर पहुँचता हूँ कि जो आश्रम इस स्थान पर स्थापित हुआ है वह अवश्य ही किसी ऐसे बहुत लम्बे युद्ध का परिणाम और फल है जो कहीं ऊपर आध्यात्मिक स्तर पर लड़ा जा रहा था।

इसकी सारी कहानी इतनी मोहक व आकर्षक है जिस पर सहसा विश्वास करना कठिन है। ऐसा लगता है कि यह पुराणों के किन्ही पृष्ठों से ली गई हो, परन्तु है तो एकदम असली और सच्ची। यदि इसका साक्षी मैं स्वयं ही नहीं होता तो इसका विवरण जानने पर मुझे भी ऐसा ही लगता कि यह तो एक ऐसी कहानी है जैसी कहानियों का वर्णन हमारे पुराणों में किया गया है और जिन्हें इस तर्क के युग में मनुष्य कल्पित या मनगढ़ंत समझते हैं। ऐसा समझिए कि पहले यहाँ पर आश्रम बनाने का कोई विचार, ख्याल अथवा स्वप्न भी नहीं था। किसी तरह का सुझाव, कोई नक्सा, खाका, ढाँचा और योजना तो कभी थी ही नहीं। फिर भी जब मैं इस भू-सम्पत्ति के बारे में, जो कि अब आश्रम के पास आ गई है, विचार करता हूँ तो इससे बहुत साफ़ जाहिर होता है कि यह भी किसी बड़े और लम्बे अभियान की पराकाष्ठा है जिसकी भगवान के दरबार में कल्पना हुई, योजना बनी, उसका निश्चय किया गया व निर्णय लिया गया।

ऐसा प्रतीत होता है कि सब देवताओं ने चाहा कि इस भूमि को इसकी अन्तर्निहित पवित्रता व पुनीतता प्रदान की जाए और यह प्रतिष्ठा की पात्र बने।

इस भूमि के आस-पास, जहाँ महलों के खण्डहर और भग्नावशेष, किले, मस्जिद और मन्दिर थे, आसुरिक शक्तियों को अवसर मिला और उन्होंने उस वीरान और उजाड़ स्थान पर अपना कब्जा जमा लिया। परन्तु देवताओं को भी यह स्थान बहुत अच्छा लगा और आकर्षण हुआ क्योंकि भगवान ने इस स्थान को अपने युग- परिवर्तनकारी कार्य के लिए पहले से ही

नियोजित कर रखा था और अपने भविष्य के कार्य की महती योजना के लिए इसे चुनकर रखा था। इसलिए यह स्थान झगड़े का कारण बन गया और फलस्वरूप दैवी व आसुरिक शक्तियों के बीच घमासान युद्ध इसी स्थल पर छिड़ गया।

इस युद्ध के बीच सन् 1939-40 में यह भू-सम्पत्ति ख़रीद ली गई और आसुरिक शक्तियों ने यह स्पष्ट और साफ़ रूप से देखा कि दैवी शक्तियों ने उनके विरूद्ध अपना एक कदम आगे बढ़ा लिया है। यह देखकर आसुरिक शक्तियों ने दैवी शक्तियों के हरेक चरण पर अनेक विघ्न बाधाएँ डालनी शुरु कर दीं। तीन बार तो यह भू-खण्ड कुछ कानूनी अड़चनों के कारण हाथ से निकल गया। अब इस स्थान में भवन-निर्माण सम्बन्धी जो कार्य हो चुका था उस आर्किटेक्ट और इंजीनियरों ने आकर देखा और उन्होंने अपनी राय दी जिससे कि इस भवन का निर्माण कार्य प्रारम्भ हुआ। इस नये निर्माण में अभी थोड़ी ही प्रगति हुई थी कि सरकार की तरफ से तरह-तरह की नई समस्यायें जैसे इसकी रूप-रेखा व धन-सम्बन्धी खड़ी हो गईं। काम में देरी पर देरी होने लगी जिसके परिणामस्वरूप मन में निराशा घर करने लगी।

फिर भी अनेक कठिनाइयों के बावजूद समय पाकर भवन के निर्माण का कार्य पूरा हो गया और यह प्रयास चलने लगा कि इस स्थान को सामाजिक, राजनैतिक और अन्त में लोककल्याण कार्य के लिए प्रयुक्त किया जाए। परन्तु ये धारणायें भी व्यर्थ सिद्ध हुईं और फिर से ये प्रयत्न प्रारम्भ हुए कि इस भवन तथा इसके साथ लगी हुई जो ज़मीन थी उसमें नर्सिंग-होम सहित एक बड़ा अस्पताल, कृषि-फार्म, छात्रालय, हवाई-जहाज़ चलाने वालों के लिए एक विश्राम-गृह और अमेरिकी सैनिकों के लिए कुछ लम्बी-लम्बी बैरकें बनाई जायें।

चूँकि उन दिनों द्वितीय विश्वयुद्ध चल रहा था। इसलिए ये सब चीजें आवश्यक प्रतीत हुई। परन्तु अन्त में ये सब धारणायें और योजनायें भी विफ़ल हो गईं और अब सन् 1947 में पाकिस्तान से आये हुए शरणार्थियों की समस्या आ खड़ी हुई। यह प्रश्न उपस्थित हुआ कि लाखों निराश्रित लोगों को रहने का स्थान कहाँ और कैसे दिया जाए ? शरणार्थी लोग सारी पुरानी छोटी-मोटी इमारतों के खण्डहरों में, टूटे-फूटे हुए पुराने मकानों, स्थानों और यहाँ तक कि सड़कों के किनारों पर भी टिक गये थे, परन्तु इस भवन में कोई नहीं आया।

इस भूमि में दो सौ फीट गहरा एक ट्यूब-वेल खोदा गया लेकिन जब उसमें नीचे से अच्छे पानी का कोई आसार ही नज़र नहीं आया तब उसे भी छोड़ देना पड़ा यह ज़मीन इतनी बंजर थी कि कोई फूल-फल, वृक्ष उगना तो दूर रहा, घास का एक तिनका भी यहाँ मानों सहन नहीं होता था। मनुष्य जाति तो एक तरफ, जानवरों तक को भी यहाँ रखना मुश्किल काम था। परन्तु फिर भी कुछ ही सालों तक चेष्टा की गयी और प्रारम्भ में कुछ गायें यहाँ रखी गयीं। जब वे गायें और इनके बछड़े मिलाकर अठारह के करीब हो गये थे तभी डाकू इन्हें उड़ा ले गये। सब लोगों की वर्षो की सामूहिक मेहनत, प्रयास और आगे की योजनायें सब खड्ड में पड़ गईं और बेकार हो गयीं।

इस तरह यह स्थान बहुत साल तक उजड़ा हुआ और वीरान पड़ा रहा। अन्धकार, टूटी-फूटी कब्रों और खण्डहरों से घिरे हुए इस बियाबान स्थान ने एक भयावनी जगह का रूप धारण कर लिया। डरावने जंगली जीव - जन्तुओं के जमाव का यह डेरा बन गया। भ्रष्ट और भयानक प्राणियों के लिए अन्धेरे और वीराने में यह खाने-पीने का मानो एक सैरगाह बन गया। चोर - डाकुओं के छिपने के लिए अड्डा हो गया और बड़े – बड़े चूहों, चमगादड़ और उल्लुओं ने भी इसे अपना बसेरा बना लिया। हर प्रकार के साँपों ने रहने के लिए बिल बना लिए और गीदड़ भी अपनी हुआ - हुआ की बोली से दिन - रात धरती - आकाश

गुँजाने लगे। यह सब आसुरिक शक्तियों को तो बहुत अच्छा लगा और उन्होंने सोचा कि चलो अब यह स्थान भगवान के काम के योग्य तो रहा नहीं। इस प्रकार यह स्थान आसुरिक शक्तियों का एक सुदृढ़ गढ़ बनता गया जो भागवत - कार्य के ऊपर हमला बोलने के लिए हमेशा उद्यत और तत्पर रहती थीं।

इसी समय कुछ ऐसी घटनाएँ घटीं जो तर्क से समझाई नहीं जा सकतीं। एक ऐसे व्यक्ति, जिनका मेरे साथ 1942 की क्रान्ति-भारत छोड़ो आन्दोलन के समय जेल में वास्ता पड़ा था परन्तु उसके पश्चात् उनका कुछ पता नहीं चला, एक दिन अचानक मेरे घर सन् 1955 में आ पहुँचे। मैं उस समय 27, औरंगज़ेब रोड पर रहता था। अजीब बात यह थी कि जब मेरी जान - पहचान इस सज्जन से पहले जेल में हुई थी तो पुलिस भी यह कभी पता नहीं लगा पाई कि वह हैं कौन ? क्या उनका नाम है तथा उनके बाप का नाम क्या है और क्या उनका पता है? इस कारण पुलिस कभी उनके विरुद्ध कोई मुकदमा भी ना बना सकी। बातचीत करने और देखने से तो वह बिल्कुल सनकी, झक्की और खब्ती मालूम होते थे। कहने लगे, मैं भगवान का दूत हूँ। मैंने उनका अता - पता जानने की बहुत कोशिश की परन्तु कभी कुछ पता नहीं लगा। तो भी एक दिन वे कहने लगे, "मैं इस समय एक विशेष लक्ष्य को लेकर आया हूँ और वह यह है कि आपका जो एक भवन कुतुब के रास्ते में है और जिसमें आसुरिक शक्तियों ने अपना डेरा जमाया हुआ है और अपना कब्जा किया हुआ है उस भवन में से मुझे उन आसुरिक शक्तियों को निकाल बाहर करना है।"

मैं उनकी बातों को सुनकर बड़ा हैरान हुआ। परन्तु वे शख्स तो शाम को अपने लक्ष्य पर चले ही गये। मैं तो यह कभी सोच भी नहीं सकता था, ना आशा करता था और ना ही मान सकता था। दूसरे दिन प्रातः वे मेरे घर आ पहुँचे। उनका हाल बुरा था। फटे हुए कपड़े, सिर के बाल और दाढ़ी ऐसी बिखरी हुई जैसे कि बुरी तरह पिटे हुए हों। आते ही कहने लगे-

आसुरिक शक्तियों में ताकत बहुत अधिक थी जिसका मुझे अन्दाज़ भी नहीं था। इस कारण भयंकर युद्ध करना पड़ा। परन्तु मैं उन्हें मारकर छोड़ूँगा। हाँ! उनको जरूर हराकर छोड़ूँगा, ऐसा निश्चयपूर्वक करते हुए वे चले गये।

अगले दिन प्रातः जब वे फिर मेरे घर आये तो इस बार उनकी हालत इतनी अधिक ख़राब थी, इतनी ख़स्ता थी और हाल इतना बेहाल था कि वे बिल्कुल टूटे हुए, चूर - चूर व क्षत् - विक्षत् अवस्था में थे लेकिन इसके ठीक विपरीत उनकी आँखों में विजय की एक चमक थी और वे उसी अद्भुत चमक से जगमगा रहे थे। वे भाव-भरे स्वर में बोले - "आसुरिक शक्तियों ने डटकर मुकाबला किया और आखिरी दम तक हमारी घमासान लड़ाई चलती रही,परन्तु अब उनका समय खत्म हो चुका है और मैंने उन्हें पूरी तरह से निकाल बाहर फेंका है। अब यह भवन हमेशा के लिए भगवान के अवतरण के लिए खाली है।" अगली बार जब मैं पांडिचेरी आश्रम पहुँचा तो मैंने माताजी से प्रार्थना की कि आश्रम उद्घाटन के लिए कोई तिथि निश्चित कर दें। माताजी ने तुरन्त 12 फरवरी 1956 निश्चित कर दिया। मैंने कहा - "माताजी 21 फरवरी क्यों नहीं, जो कि बहुत महत्वपूर्ण है और आपका पवित्र जन्मदिन है। माताजी ने कहा 12 और 21 एक ही बात है, इसमें कोई अन्तर नहीं है। माताजी ने आगे कहा- बारह लोग इकट्ठे होकर प्रार्थना करें तो वह प्रार्थना मंजूर होती है। तो इस प्रकार दिल्ली आश्रम की प्रतिस्थापना हुई। माताजी एक दिन मुझसे कहने लगीं -"मैं यहाँ की अपेक्षा दिल्ली में अधिक हूँ। मुझे आशा है कि तुम लोग वहाँ मेरी उपस्थिति अनुभव करते होगे।" "दिल्ली आश्रम मेरे लिए अधिक महत्व का स्थान है। मैं आशा करती हूँ और पूरी उम्मीद करती हूँ कि दिल्ली आश्रम के माध्यम से श्रीअरविन्द का बहुत - सा कार्य हो सकेगा।"

लक्ष्य-

मैंने माताजी से पूछा- श्रीअरविन्द आश्रम-दिल्ली शाखा का लक्ष्य क्या है ? माताजी यदि आप सन्देश के रूप में यह लिखकर दे दें तो कुछ बात साफ हो जाये। माताजी ने कहा मैं अभी लिखकर दे देती हूँ। और एक सुन्दर कार्ड पर यह सन्देश लिखकर दे दिया -"यह स्थापना अपने नाम को सार्थक करे तथा संसार के प्रति श्रीअरविन्द की शिक्षा व सन्देश की सच्ची आंतरिक व प्रेरक शक्ति को अभिव्यक्त कर सके।"

श्रीमाँ
कर्मधारा 2018

भगवान स्वयं मार्ग पर चलकर मनुष्यों को राह दिखाने के लिए मनुष्य का रूप धारण करते हैं और बाहरी मानव - प्रकृति को स्वीकार करते हैं। पर इससे-उनका 'भगवान'होना खत्म नहीं हो जाता। यह एक अभिव्यक्ति होती है, बढ़ती हुई भागवत चेतना अपने - आपको प्रकट करती है। यह मनुष्य का भगवान में बदल जाना नहीं है। श्रीमाँ अपने आन्तर स्वरूप में बचपन में भी मानवत्व से ऊपर थीं। इसलिए 'बहुत से लोगों' का जो उपर्युक्त मत है वह भ्रमात्मक है।

-श्रीअरविन्द

कौन

अनुवाद -विमला गुप्ता

आकाश की नीलिमा में, वन की हरियाली में,
किस हाथ ने भरे हैं ये चमकीले रंग?
जब हवाएँ थी सोई हुई व्योम के गर्भ में,
किसने उन्हें जगाया और बहने का दिया आदेश?
वह खोया हुआ है हृदय में, प्रकृति की कन्दरा में
विचारों को सृजता हुआ वह पाया जाता है मन में
वह गुंथा हुआ है फूलों के प्रतिरूप और प्रस्फुटन में,
और फंसा हुआ है सितारों के प्रभामय जाल में।
पुरुष के पौरुष में, नारी के सौंदर्य में,
बालक की किलकारी और बालिका की लालिमा में,
वह हाथ जिसने वृहस्पति को घुमाकर फेंक दिया अन्तरिक्ष में,
खर्च कर देता है अपनी चतुराई एक घुँघराल को सँवारने में।
ये हैं उसके कार्य और उसके आवरण एवं प्रतिबिम्ब,
लेकिन वह स्वयं कहाँ है? जाना जाता है किस नाम से?
वह ब्रह्मा है या विष्णु? पुरुष है अथवा नारी?
देही है या अदेही? दुकेला है या अकेला?
हमें प्रेम है एक बालक से जो साँवला और तेजस्वी है,
एक नारी है हमारी आराध्या, अनावृत्त एवं भयंकर।
हमने देखा है उसे पहाड़ों की बर्फ पर ध्यानमग्न,
और जीवन क्षेत्र के केन्द्र बिन्दु में अनवरत कर्मरत।
हम समस्त विश्व से करेंगे बखान उसके चातुर्य और ढंग,
उसमें मोह और यंत्रणा है और पीड़ा का है आनन्द,
वह खुश होता हमारे दुख में और हमें रूदन की ओर धकेल देता,
फिर हमें अपने आनन्द और सौंदर्य छटा से प्रलोभित करता।
समस्त संगीत उसकी हँसी की गूंज है,

समस्त सौंदर्य उसके मनोहर आनन्द की मुस्कान,
उसकी धड़कनें हैं हमारा जीवन, हमारा आनन्द
राधाकृष्ण का परिणय बंधन, हमारा प्रेम उनका चुंबन।
वही वह शक्ति है जो सूर्यनाद के घोष में है,
वह रथ में सारथी और भाले में आघात है,
वह बेहिचक संहार करता है और करुणा से ओतप्रोत है,
वह इस जगत और इसके चरम लक्ष्य के लिए सदैव युद्धरत है।
विश्व के फैलाव में, युगों के हिलोर में,
वह अवर्णनीय, शक्तिमय, भव्य और पवित्र,
विचारक के चिन्तन की पराकाष्ठा से परे
अपने अचल भव्य सिंहासन पर वह आसीन है।
मनुष्य का स्वामी और उसका अनन्त प्रेमी,
हमारे हृदयों के है अति समीप, यदि हम उसे देख पाते,
हम अपने अहं एवं आसक्तियों के आडम्बरों में हैं अंधे,
मानते हैं खुद को मुक्त पर अपने विचारों से हैं बंधे।
सूर्य में वही है जो है कालातीत और अविनाशी,
और मध्य रात्रि में उसकी परछाई सर्वत्र ही फैली,
जब अंधेरा था बहुत घना और आच्छादित था अंधेरों से,
तब भी वही था उसमें आसीन, अकेला और असीम।
महानिशा का तीर्थयात्री

श्रीअरविन्द

पथ पर

श्रीमाँ

सवेरे से शाम तक श्रीअरविन्द वहाँ मौजूद थे। हाँ, और एक घण्टे से ज्यादा के लिए उन्होंने मुझे उस जीवन में रखा जो मानवजाति और मानवजाति के विभिन्न स्तरों की नयी या अतिमानसिक सृष्टि का जीवित और ठोस दृश्य था। वह अद्भुत रूप से स्पष्ट, जीवित और ठोस था वह सारी मानवजाति थी जो अब पूरी तरह पाशविक नहीं है, जिसने मानसिक विकास से लाभ उठाया है और अपने जीवन में एक तरह का सामंजस्य पैदा किया है एक ऐसा सामंजस्य जो प्राणिक, कलात्मक और साहित्यिक है और उसमें रहने वालों का बहुत बड़ा भाग उससे संतुष्ट है। उन्होंने एक प्रकार का सामंजस्य पा लिया है और उसके अन्दर वे ऐसा जीवन जीते हैं जैसे सभ्य परिस्थितियों में हुआ करता है यानी, ऐसा जीवन जो कुछ-कुछ संस्कृत होता है, जिसमें परिष्कृत रूचियाँ और परिष्कृत आदतें होती हैं, उस सारे जीवन में एक विशेष सौन्दर्य होता है जिसमें वे आराम से रहते हैं। जब तक कोई अनर्थ न हो जाए वे प्रसन्न और संन्तुष्ट रहते हैं, जीवन से संतुष्ट रहते हैं। ऐसे लोग आकर्षित हो सकते हैं (क्योंकि उनमें रूचि है और वे बौद्धिक दृष्टि से विकसित हैं), वे नयी शक्तियों से, नयी चीजों से भविष्य की ओर आकर्षित हो सकते हैं उदारण के लिए, वे मानसिक रूप से, बौद्धिक रूप से श्रीअरविन्द के शिष्य बन सकते हैं। लेकिन उन्हें भौतिक दृष्टि से बदलने की जरा भी जरूरत नहीं मालूम होती और अगर वे बाधित किये जाए तो पहले यह अपक्क और न्याय के विपरीत होगा और बिल्कुल व्यर्थ में उनके जीवन में अव्यवस्था और गड़बड़ी पैदा करेगा।

यह बिल्कुल स्पष्ट है। और फिर कुछ ऐसे थे - बहुत ही विरले व्यक्ति - जो रूपांतर की तैयारी करने के लिए, नयी शक्ति को खींचने के लिए, जड़ - द्रव्य को अनुकूल बना लेने और अभिव्यक्ति के साधन खोजने के लिए आवश्यक प्रयास करने के लिए तैयार थे। ये लोग श्रीअरविन्द के योग के लिए तैयार हैं। ये संख्या में बहुत ही कम हैं। ऐसे लोग भी हैं जो यज्ञ की भावना से भरे हैं। वे कठोर कष्टप्रद जीवन के लिए भी तैयार हैं, यदि वह भावी रूपांतर की तरफ ले जायें या उसमें सहायता दें। लेकिन उन्हें कभी, किसी प्रकार, दूसरों को प्रभावित करने की कोशिश नहीं करनी चाहिए। उन्हें अपने प्रयास में भाग लेने के लिए मजबूर न करना चाहिए - यह बिलकुल अनुचित होगा, केवल अनुचित ही नहीं, बल्कि एकदम भद्दा भी। क्योंकि उससे वैश्व लय और गति या कम - से - कम पार्थिव गति में परिवर्तन आ जायेगा और यह सहायता करने की जगह संघर्ष और अन्त में अव्यवस्था पैदा करेगा।

लेकिन वह इतना जीवंत था, इतना वास्तविक था कि मेरी सारी वृत्ति (कैसे कहा जाए? एक निष्क्रिय वृत्ति जो सक्रिय संकल्प का परिणाम नहीं है), काम में मेरी स्थिति ही बदल गयी। और यह एक शांति लायी है- एक शांति, स्थिरता और विश्वास जो बिलकुल निर्णायक हैं, एक निर्णायक परिवर्तन आया है। और जो कुछ पहले की स्थिति में दुराग्रह, भद्दापन, निश्चेतना- सब प्रकार की शोचनीय वस्तुएँ मालूम होती थीं- यह सब गायब हो गया है। यह मानों एक महान वैश्व लय का दृश्य था जिसमें हर चीज़ अपना स्थान लेती है और हर चीज बिल्कुल ठीक है। और रूपांतर के लिए प्रयास एक छोटी-सी संख्या तक सीमित रहकर ज्यादा मूल्यवान और उपलब्धि के लिए अधिक सशक्त बन जाता है। यह ऐसा है मानों उन लोगों के लिए चुनाव हो गया है जो नयी सृष्टि के पुरोगामी होंगे और "प्रसार" " तैयारी" और "जड़द्रव्य" के मंथन की बातें बचकानी हैं। यह मनुष्य की बेचैनी है।

वह एक सौन्दर्य का दृश्य था, बड़ा भव्य, शांत और मुस्कराता हुआ, ओह! वह भरा हुआ था, सचमुच भागवत प्रेम से

भरा हुआ था, वह भागवत - प्रेम नहीं, जो क्षमा करता है - नहीं, या वैसा बिलकुल नहीं ! हर चीज़ अपने स्थान पर, अपनी आंतरिक लय को यथासंभव अधिक से अधिक उपलब्ध करती हुई।

यह बहुत ही सुन्दर उपहार था। हाँ तो लोग इन चीजों को अंशतः जानते हैं। बौद्धिक दृष्टि से, इस तरह, विचार के रूप में जानते हैं। लेकिन इससे कुछ काम नहीं बनता। अपने दैनिक व्यवहार में तुम और ही तरह, ज्यादा सच्ची समझ के साथ जीते हो। और वहाँ, ऐसा लगता है मानों तुम वस्तुओं को उनकी उच्चतर स्थिति में छू रहे हो, उन्हें देख रहे हो, उन्हें छू रहे हो।

यह पौधों और पौधों के सौन्दर्य के सहज अन्तर्दर्शन के बाद आया (यह बहुत अद्भुत चीज़ है), फिर आये बड़े सामंजस्यपूर्ण जीवन वाले पशु (जब तक मनुष्यों का हस्तक्षेप न हो), और यह सब कुछ ठीक स्थान पर था। तब सच्ची मानव जाति मानव के रूप में आयी, यानी, मानसिक संतुलन जितने सौन्दर्य, सामंजस्य, सौम्यता, लालिप्त, जीवन में रस को-सौन्दर्य, में जीने के रस को-रच सकता था उसे लिए हुए आयी। स्वभावतः जो कुछ भद्दा, नीच और गँवारू है उसे दबा दिया गया था। वह एक सुन्दर मानवजाति थी, मानवजाति अपनी उच्चतम स्थिति में थी लेकिन सुन्दर थी और मानव-स्थिति से पूर्णतः संतुष्ट थी क्योंकि वह सांमजस्य के साथ रहती थी। यह शायद इस बात की पूर्वसूचना थी कि नयी सृष्टि के प्रभाव के तले प्रायः सारी मानवजाति कैसी हो जाएगी। मुझे ऐसा लगा कि आतिमानसिक चेतना मानवजाति को कैसा बना सकती है। शायद इसमें मानव जाती ने पशु जाति का क्या किया, उसके साथ तुलना भी थी (यह स्वभावतः, बहुत ज्यादा मिला-जुला प्रभाव है पर चीजें ज्यादा पूर्ण बनायी गयी हैं, ज्यादा अच्छी की गयी हैं और ज्यादा अच्छी तरह उपयोग में लायी गयी हैं)। मन के प्रभाव के तले पशु योनि कुछ और ही बन गयी है, वह स्वभावत: है तो कुछ मिश्रित-सी चीज़ क्योंकि मन अपूर्ण था, इसी तरह भली-भाँति सन्तुलित लोगों के बीच सामंजस्य- पूर्ण मानवता थी। ऐसा लगता था कि अतिमानसिक प्रभाव के अधीन मानवजाति क्या हो सकती है।

लेकिन यह अभी बहुत दूर है। तुम्हें इसकी तुरन्त आशा न करनी चाहिए - यह बहुत दूर है।

स्पष्टतः अभी यह एक संक्रमण काल है जो काफी लम्बे समय तक रह सकता है और है भी कष्टदायक। कभी-कभी इस कष्टदायक प्रयास (बहुधा कष्टदायक) की क्षतिपूर्ति, हमें जिस लक्ष्य तक पहुँचना है उसके स्पष्ट दर्शन, उस लक्ष्य के स्पष्ट दर्शन से जिसे हम जरूर प्राप्त करेंगे एक आश्वासन से, हाँ, निश्चिति से होती है। लेकिन वह कुछ ऐसी चीज़ें होंगी जिसमें सब भ्राँति, विकृति, मानव जीव की सारी कुरूपता को निकाल बाहर करने की शक्ति होगी और तब वह एक ऐसी मानवजाति होगी जो बहुत प्रसन्न, मानव होने से बहुत संतुष्ट होगी जिसे मनुष्य से अलग कुछ और बनने की जरूरत न मालूम होगी लेकिन उसमें मानव सौन्दर्य और मानव सामंजस्य होगा।

यह बड़ा मोहक था, मानों मैं उसमें जी रही थी। विरोध गायब हो गये थे। यह ऐसा था मानों मैं पूर्णता में जी रही थी। यथासंभव पूर्ण थी। और वह बहुत अच्छी थी।

और यह बहुत बड़ा विश्राम लाती है। तनाव, संघर्ष आदि सब गायब हो जाते हैं, और अधीरता भी। यह सब पूरी तरह गायब हो गये।

संकलन

आश्रम गतिविधियाँ

नववर्षाभिनन्दन (31 दिसम्बर2020 -1 जनवरी 2021)

31 दिसम्बर 2020 रात्रि 12 बजे ध्यान कक्ष में श्रीमाँ के नववर्ष संगीत के साथ ध्यान किया गया। आश्रम के सभी सदस्य उसमें शामिल हुए ध्यान के पश्चात सभी को नववर्ष की शुभकामनाओं के साथ कैलेन्डर तथा श्रीमाँ एवं श्रीअरविन्द की तस्वीर उनके अशीर्वाद स्वरूप भेंट की गईं।

20 जनवरी श्री अनिल जी का जन्मदिन

20 जनवरी 2021 को हर साल की तरह श्रीअरविन्द आश्रम में श्री अनिल जौहर जी का जन्म दिन बड़े उत्साह के साथ मनाया गया इस दिन आश्रम के शिक्षार्थियों द्वारा खेल प्रतियोगिता का आयोजन किया गया, तथा संध्या समय- ध्यान कक्ष में भक्ति-संगीत का आयोजन किया गया।

26 जनवरी गणतंत्र दिवस

26 जनवरी (गणतंत्र दिवस) हमारे आश्रम में बड़े हर्षो उल्लास का वातावरण रहा। यह दिन साधिका करूणा दीदी की पुण्य तिथि भी है। करुणा दीदी का संगीत आश्रम प्रांगण की अनमोल धरोहर है जिसका स्मरण करते हुए सुबह 10:30 बजे से आश्रमवासियों द्वारा उन्हें श्रद्धांजलि देते हुए गायन संगीत के कार्यक्रम की शुरुवात की गई। जिसमें करूणा दीदी को याद करते हुए देश प्रेम तथा भक्ति गीत प्रस्तुत किये गये कार्यक्रम में आश्रम के प्रशिक्षार्थियों ने भी भाग लिया। उस दिन दोपहर-भोजन का प्रबन्ध , मदर स्कूल (M.I.S) के मैदान में किया गया। तथा संध्या समय ध्यान कक्ष में तारा दीदी द्वारा श्रीअरविन्द की कविता (जो करुणा दीदी को प्रिय थी) का सस्वर पाठ किया गया।

स्थापना दिवस (12 फरवरी)

12 फरवरी दिल्ली आश्रम के लिए बहुत बड़ा दिन है। इस दिन श्री सुरेन्द्रनाथ जौहर द्वारा श्रीमाँ की प्रेरणा से श्रीअरविन्द आश्रम दिल्ली शाखा की स्थापना हुई थी। आश्रम में इस दिन प्रातः हवन किया गया तत्पश्चात श्रीमाँ के हस्ताक्षर तथा उनकी जीवन-कथा दर्शाते चित्रों के माध्यम से सुन्दर प्रदर्शनी (Exhibition) का आयोजन किया गया। प्रदर्शनी का उद्घाटन माननीय निरुपमा जी (Secretary- Ministry of Culture) द्वारा किया गया। इस दिन आश्रम का द्वार बाहर से आने वाले श्रद्धालुओं के लिए खुला रखा गया। दोपहर के पश्चात सभी आश्रमवासियों की सामुहिक तस्वीरें खीची गईं।

संध्या समय समाधि के चारों तरफ अभीप्सा के दीप प्रज्ज्वलित किये गये। ध्यान -कक्ष में तारा दीदी द्वारा आश्रम स्थापना सम्बन्धित चाचाजी द्वारा लिखित लेख का सस्वर पाठ तथा भक्ति संगीत का आयोजन किया गया।

श्रीअरविन्द कर्मधारा की स्वर्ण जयंति

फरवरी 2021में आश्रम की पत्रिका श्रीअरविन्द कर्मधारा की स्वर्ण जयंती-समारोह मनाया गया। पत्रिका के 50 वर्ष पूर्ण हुए ,इस पर हर्ष प्रकट करते हुए आश्रम द्वारा वीडियो में डॉ अपर्णा रॉय, सुश्री विजय भारती व रगंमा दीदी द्वारा पत्रिका के इतिहास से संबंथित बातचीत में जिज्ञासुओं के लिए सविस्तार जानकारी प्रस्तुत की गई। सभी ने पत्रिका से जुड़े अपने अनुभव भी साझा किए।

21 फरवरी

21 फरवरी श्रीमाँ का जन्मदिन है आश्रम प्रांगण में उस दिन अद्भुत उत्साह, उल्लास, और प्रसन्ता का वातावरण था। एक लम्बे समय के बाद आश्रम का द्वार बाहर से आने वाले श्रद्धलाओं के लिए खोला गया था। आश्रम की दिनचर्या ध्यान कक्ष में श्रीमाँ के आवाहन संगीत के द्वारा आरम्भ हुई। दिन भर ध्यान - कक्ष में भक्ति संगीत होता रहा। आने वाले श्रद्धालुओं के लिए प्रसाद (फल) की व्यवस्था की गई थी।

सभी ने स्थापना दिवस को आरम्भ हुई प्रदर्शनी(The Divine Signature) का भी आनन्द लिया संध्या 5:00 बजे तक लोगों का आना - जाना लगा रहा आश्रम की दिल्ली शाखा की ओर से श्रीमाँ के जीवन और स्वरूप से संबधित ऑन - लाइन वार्ताएँ प्रसारित की गईं।

संध्या समय आश्रमवासियों ने समाधि के चारों तरफ परेड करते हुए श्रीमाँ को सलामी दी तथा वन्दे मातरम की ध्वनि से आश्रम गूँज उठा। सभी ने अभीप्सा के दीप जलाये। ध्यान-कक्ष में पुनः भक्ति गीत के साथ तारा दीदी ने श्रीअरविन्द रचित पुस्तक **द मदर** से श्रीमाँ के चार स्वरूप का सस्वर पाठ किया।

CALCUTTA
MUSICAL DEPOT